# आदर्श हिंदू स्त्री

## हिंदी नवजागरण से गीता प्रेस तक

चारु सिंह
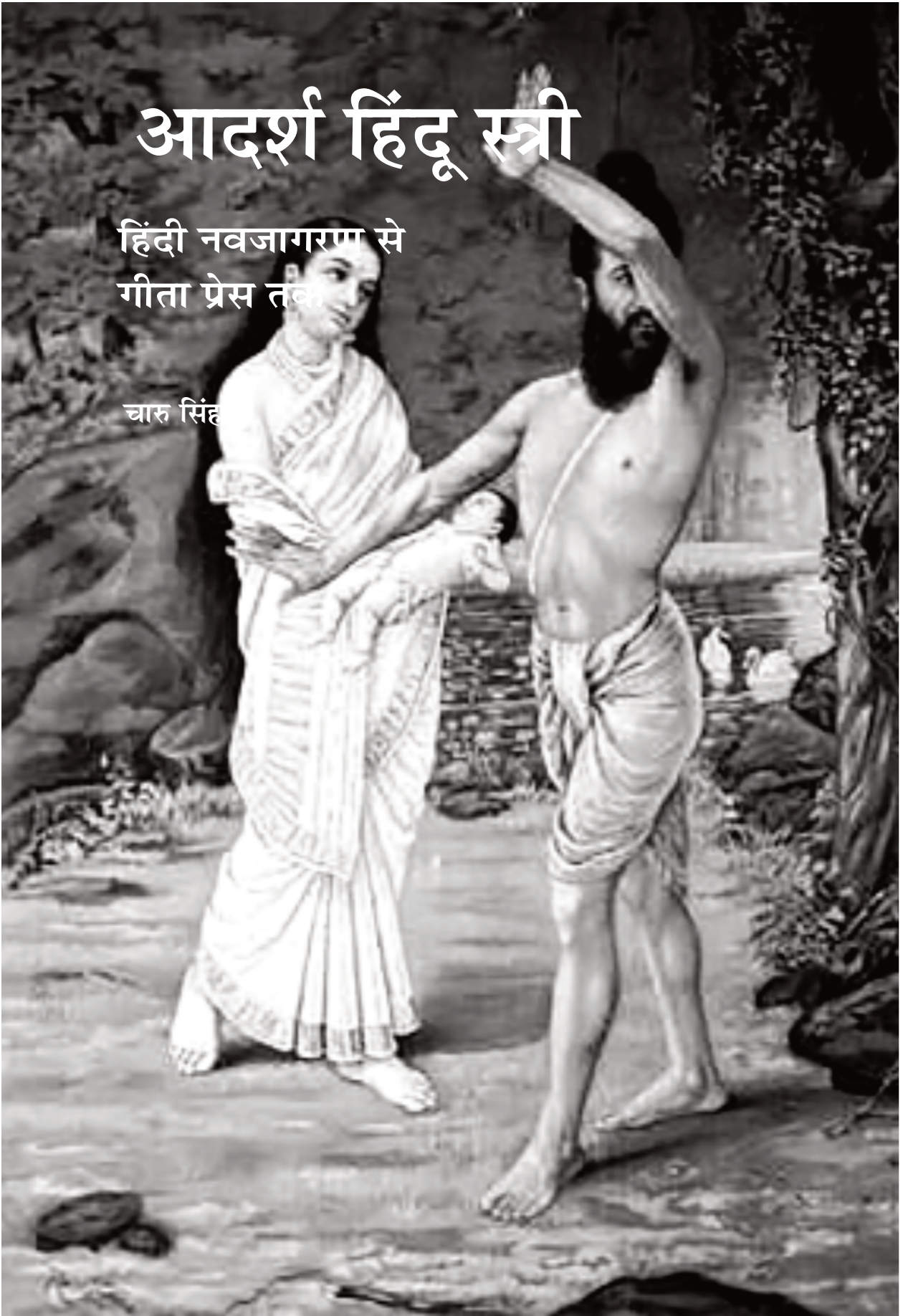
**हमारे धर्माचार्य पूर्वाग्रह-ग्रस्त और भ्रष्ट हैं, वैसे ही जैसे दूसरे धर्मों के होते हैं। उनके वर्ग को मैं नापसंद करती हूँ। किसी विषय में सतही जानकारी रखने के बजाय मैं अज्ञानी और अशिक्षित रहना अधिक पसंद करूँगी ... मैं अधार्मिक व्यक्तियों को मार्गदर्शक मानती हूँ। अगर पुरोहिताई न होती तो यह संसार आज से दस हज़ार गुना उन्नत और बेहतर होता। अतः इसकी कोई ज़रूरत नहीं कि आप हमारे धर्माचार्यों से कुछ भी सीखने की उम्मीद करें जो निस्संदेह अंधकार में टटोल रहे हैं।**

**—डॉ. आनंदीबाई जोशी**[1]

आनंदीबाई जोशी औपनिवेशिक भारत में आयुर्विज्ञान की डिग्री लेने वाली पहली महिला थीं। अपनी एक मित्र को लिखे गये इस पत्र में आनंदीबाई धर्माचार्यों से कुछ भी सीखने से अज्ञानी और अशिक्षित रहने को बेहतर मान रही हैं। धर्मगुरुओं द्वारा दी जा रही शिक्षा पर उनकी यह टिप्पणी ध्यान देने योग्य है। औपनिवेशिक भारत में शिक्षित स्त्री का प्रतीक मानी जा रही आनंदीबाई की यह टिप्पणी हिंदू-अस्मिता की राजनीति के ज़रिये स्त्री-शिक्षा को नियंत्रित करने के हिंदू राष्ट्रवादी प्रयासों पर एक गम्भीर प्रतिक्रिया है। यह उन्नीसवीं सदी की एक उच्च शिक्षा प्राप्त और धार्मिक कही जाने वाली स्त्री की टिप्पणी होने के नाते भी महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि यहाँ वह स्त्री के लिए गढ़े गये कथित नियम-क़ायदों की वैधता पर ही सवाल उठा रही है। अगर उन्नीसवीं सदी के स्त्री-लेखन पर ध्यान दें तो धर्म की सत्ता को चुनौती देती और भी महिलाएँ दिखाई देंगी। ये महिलाएँ धर्म की रूढ़िवादिता को चुनौती देती हुई शिक्षित हुई थीं। ऐसी स्त्रियाँ अक्सर समाज-सुधार के आंदोलनों से सम्बद्ध हुआ करती थीं। धर्म के संदर्भ में इन आंदोलनकारी स्त्रियों का लेखन अपने समकालीन लेखन के समानांतर गतिशील था। जहाँ एक ओर 'हिंदू जाति' के नाम पर स्त्रियों के जीवन को अनुशासित और नियंत्रित किये जाने की रणनीति थी, वहीं दूसरी ओर इसे चुनौती देने और इससे मुक्त होने का प्रयास। आने वाले समय में हिंदी नवजागरण के दौर की इस 'हिंदू जाति' की अवधारणा ने भी उस राजनीतिक विचारधारा को बल दिया जिसे 'हिंदुत्व' के नाम से जाना जाता है। 'हिंदुत्व' की इस आधुनिक अवधारणा की जड़ों को औपनिवेशिक दौर में स्त्रियों के मुक्त हो जाने के भय से उपजी पितृसत्तात्मक चिंता के रूप में भी देखा जा सकता है।

जेंडर की नज़र से 'हिंदुत्व' को समझने की कोशिश उन्नीसवीं सदी के अंतिम दशकों की ओर ले जाती है जब एक हिंदू जाति (राष्ट्र की अवधारणा का शुरुआती रूप)[2] के रूप में हिंद, हिंदू और हिंदी[3] की परिकल्पना की गयी थी। इसी के साथ हिंदू स्त्री को एक नये ढंग से परिभाषित और अनुशासित किया जाने लगा था। अब अटल एकपतित्व की प्रथा से बँधी हुई हिंदू स्त्री की पवित्रता, राष्ट्रवाद के दावों में केंद्रीय हो गयी।[4] स्त्रीत्व भारतीयता का प्रतीक बन कर उभरा जहाँ भारतीय नारी में उस विशिष्ट आध्यात्मिक तत्त्व की परिकल्पना की गयी जो भारत को पश्चिम से अलग और श्रेष्ठ बताता था।[5] हिंदू स्त्री की आध्यात्मिक श्रेष्ठता का यह तर्क बाद की पूरी शताब्दी में भारतीय जनमानस को प्रभावित करता रहा। इस लेख में हम देखेंगे कि कैसे उन्नीसवीं सदी की राजनीतिक-आर्थिक

---

[1] कैरोलिन हीले डाली (1988) : 50.

[2] बालकृष्ण भट्ट के लेखन में 'हिंदू जाति' शब्द का प्रयोग बार-बार हुआ है. जैसे— 'जब समस्त हिंदू जाति की एक वैदिक जाति न रही तो वही मसल चरितार्थ हुई कि 'एक नारि जब दो से फँसी जैसे सत्तर वैसे अस्सी.', 'साहित्य जनसमूह के हृदय का विकास है', देखें, सत्य प्रकाश मिश्र (2011) : 20.

[3] बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' का इसी शीर्षक का निबंध, *प्रेमघन रचनावली,* भाग 2 : 51.

[4] तनिका सरकार (1995) : 61.

[5] पार्थ चटर्जी (1993) : 62-68.

परिस्थितियों से उत्पन्न 'हिंदू जाति' की स्त्री-संबंधी विचारधारा को बाद के धार्मिक संगठनों ने न सिर्फ़ 'हिंदुत्व' के रूप में अपनाया बल्कि उसका परिष्कार करके एक अधिक कठोर आचरण-संहिता का रूप दिया और उसे घर-घर पहुँचाने की बहुत हद तक सफल मुहिम का संचालन भी किया।

उन्नीसवीं सदी की 'हिंदू जाति' से अब के 'हिंदुत्व' की राजनीतिक यात्रा में एक निरंतरता देखी जा सकती है। इस लेख में 'हिंदुत्व' की विचारधारा का स्त्री से संबंध समझने के लिए हमने स्वयं को हिंदी-प्रदेश तक सीमित रखा है। उन्नीसवीं सदी के हिंदी नवजागरण और इक्कीसवीं सदी में प्रकाशित हो रहे गीता प्रेस के स्त्री संबंधी साहित्य को इस अध्ययन का आधार बनाया गया है। गीता प्रेस का स्त्री संबंधी अधिकांश साहित्य लगभग 1950 तक लिखा जा चुका था, लेकिन अब भी इन किताबों का लगातार मुद्रण और परिष्करण जारी है। इनकी बिक्री के आँकड़े चौंकाने वाले हैं। 2013 तक स्त्रियों के लिए *कर्तव्य-शिक्षा* की कुल मुद्रण-संख्या 12,97,000 थी, *नारी-धर्म* की 14,75,250, *स्त्री-धर्मप्रश्नोत्तरी* की मुद्रण-संख्या 10,21,000 थी तो नारी शिक्षा की 10,69,000 प्रतियाँ छप चुकी थीं। लगभग हर शहर में इनकी निजी दुकानें तथा सरकार द्वारा उपलब्ध कराए गये स्टेशन-स्टॉल मौजूद हैं। ऑनलाइन भी इन किताबों को ख़रीदा जा सकता है। कहना न होगा, अकादमिक किताबों की आम लोगों तक पहुँच इनकी तुलना में नगण्य है। ऐसे में हम गीता प्रेस की किताबों को आम लोगों के सामान्य-ज्ञान को प्रभावित करने वाले कारक के रूप में देख सकते हैं। उन्नीसवीं सदी के लेखकों का ज़िक्र यहाँ विचारधारा की निरंतरता और विकास को समझने के लिए किया गया है। इसका आशय हिंदी नवजागरण के साहित्य को गीता प्रेस के साहित्य के समतुल्य ठहराना नहीं है।[6] नवजागरण का साहित्य हिंदी लेखन में 'आधुनिकता' के प्रथम आगमन का दस्तावेज़ है, और निश्चित रूप से उन्नीसवीं सदी के तत्कालीन समाज को देखते हुए उसमें सुधार के स्वर और राजनीतिक परिवर्तन की प्रगतिशील आकांक्षाएँ देखी जा सकती हैं। इससे अलग गीता प्रेस का साहित्य विशुद्ध रूप से साम्प्रदायिक घृणा और धार्मिक गोलबंदी के लिए रचा गया है जिसके मूल में मुस्लिम विरोध और रूढ़िवादी जातिप्रथा का समर्थन मौजूद है। फिर भी गीता प्रेस में कही गयी कई बातों की शुरुआती जड़ हमें हिंदी नवजागरण के लेखन में दिखाई पड़ सकती है। यह सच है कि आज से क़रीब डेढ़ सौ वर्ष पहले भी इस नवजागरण के पुरोधा गीता प्रेस के लेखकों की तुलना में कम संकीर्ण और अधिक आधुनिक थे। इसके बावजूद यह भी इतना ही सच है कि उन्नीसवीं सदी के नवोदित राष्ट्रवाद ने ही बाद के गीता प्रेसनुमा स्त्री संबंधी साहित्य की ज़मीन तैयार की।

गीता प्रेस का स्त्री संबंधी साहित्य इस लेख के केंद्र में है, साथ ही निरंतरता या अंतर रेखांकित करने के लिए हिंदी नवजागरण के लेखन का इस्तेमाल किया गया है। गीता प्रेस का स्त्री आख्यान अनंत है और तमाम कोशिशों के बावजूद एक लेख में नहीं समा सकता। इसे ध्यान में रखते हुए हमने कुछ बिंदु चुने हैं जिनके सहारे 'हिंदुत्व' और 'हिंदू राष्ट्र' की राजनीति में स्त्री की हैसियत पर विचार किया जा सके। गीता प्रेस के साहित्य का इस देश में मुख्यधारा की हिंदुत्ववादी राजनीति से किस तरह का संबंध है इसे अक्षय मुकुल के विद्वत्तापूर्ण शोध के ज़रिये जाना जा सकता है। अक्षय मुकुल ने 'हिंदुत्व' की राजनीति के विकास और विस्तार पर विचार करते हुए हिंदू साम्प्रदायिकता की बुनावट में गीता प्रेस के योगदान और इसकी केंद्रीय भूमिका को रेखांकित किया है। सामाजिक आचरण के संहिताकरण के प्रयास में गीता प्रेस ने स्त्री के साथ किस तरह का बर्ताव किया, इस बारे में उनकी टिप्पणी है :

> सनातन हिंदू धर्म के व्यवसायी और प्रचारक दोनों ही रूपों में गीता प्रेस जिस नैतिक संसार में अवस्थित था, 'समर्पित और आत्मत्याग से भरी' स्त्री उसका केंद्र थी। पितृसत्तात्मक व्यवस्था द्वारा स्त्री को सौंपी गयी केंद्रीय भूमिका परिवार के नैतिक-कम्पास का ज़िम्मा उठाने और घर की सबसे भीतरी कोठरी में क़ैद होकर रहने की थी।

[6] गीता प्रेस पर विस्तृत अध्ययन के लिए देखें, अक्षय मुकुल (2015).

> स्त्री के सार्वजनिक और निजी दोनों ही क्षेत्रों के ऊपर पितृसत्तात्मक नियंत्रण रखने की गीता प्रेस की वकालत कुछ लोगों को अपने समय से जितनी 'आउट ऑफ़ ट्यून' लग सकती है, उतनी थी नहीं। वह सुधारवादी उत्साह जो उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध की विशेषता थी, उसका बीसवीं सदी की शुरुआत में जिस तरह एक दूसरी पीढ़ी के समाज सुधार के रूप में एक तर्कसंगत विकास होना चाहिए था, वह हुआ नहीं। इसके ठीक उलट, जिस वक़्त गीता प्रेस अस्तित्व में आया, उस वक़्त तक परिस्थितियाँ रूढ़िवादी एजेंडे को आगे बढ़ाने के लिहाज़ से परिपक्व हो चुकी थीं। इसके केंद्र में खड़ी थी असहाय हिंदू नारी।'[7]

दरअसल अक्षय मुकुल उन्नीसवीं सदी के सुधार आंदोलन की जिस सुधारवादी तर्कसंगत परिणति को गीता प्रेस के साहित्य में देखना चाह रहे थे, वह हुई— लेकिन गीता प्रेस के हिंदू-मिशनरी साहित्य में नहीं, बल्कि प्रेमचंद युगीन हिंदी साहित्य में। गीता प्रेस नवजागरण के दौर की रूढ़िवादिता का विस्तार-परिष्कार करते हुए हिंदुत्व की राह पर चल पड़ा।

यहाँ पर 'हिंदुत्व' की राजनीति करने वाले राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से गीता प्रेस के संबंध पर भी ध्यान देना ज़रूरी है। वर्णव्यवस्था और शास्त्र आधारित रूढ़िवादिता के विषय में अभय कुमार दुबे संघ के भीतर एक बदलाव को रेखांकित करते हैं। उनके अनुसार, 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ द्वारा पिछले नौ दशक से चलाया जा रहा हिंदू एकता का प्रोजेक्ट धर्मशास्त्रों और वर्णाश्रम से बँधे ब्राह्मणवाद की सीमाओं से निकल चुका है। उसकी मुख्य गतिविधियाँ आर्थिक-सामाजिक आधुनिकीकरण और संसदीय बहुसंख्यकवाद के दायरे में हो रही हैं। सत्तर के दशक से शुरू हुआ यह परिवर्तन केवल रणनीतिक या कार्यनीतिक नहीं है। यह मुख्य तौर से विचार-परिवर्तन है।'[8] यह सच है कि संघ की दिनोंदिन बहुसंख्यकवादी होती जा रही राजनीति में वर्णव्यवस्था का आग्रह उस तरह नहीं चल सकता। इसके बावजूद संघ के पितृसत्तात्मक आग्रहों में कोई कमी आयी हो, यह देखने में नहीं आता। यह ध्यान रखना भी ज़रूरी है कि वर्णाश्रण और ब्राह्मणवाद का संबंध केवल जाति से नहीं है। इनका संबंध पितृसत्ता से भी उतना ही है। गीता प्रेस द्वारा प्रकाशित साहित्य भले ही औपचारिक रूप से संघ से न जुड़ता हो, लेकिन वक़्त-बेवक़्त स्त्री की 'मर्यादा' और उसकी परम्परागत भूमिका आदि को लेकर सरसंघचालक द्वारा दिये गये बयानों से संघ की गीता प्रेस से अभिन्नता दिखलाई दे जाती है। यदि संघ और गीता प्रेस को एक-दूसरे से पूर्णत: वैचारिक रूप से असम्बद्ध ही न मान लिया जाए तो हिंदुत्व की राजनीति का स्त्री के प्रति रूढ़िवादी और पितृसत्तात्मक रवैया न तो परिवर्तित दिखता है, न ही वे इसे छिपाने की कोई गम्भीर कोशिश करते नज़र आते हैं। राजनीतिक अवसरवादिता और महिला मतदाताओं की भावनाएँ भी समय-समय पर संघ की ओर से आने वाले स्त्री संबंधी उद्गारों को नहीं रोक पातीं। संघ की 'दुर्गावाहिनी' जैसी शाखाएँ साम्प्रदायिकता के सहारे पितृसत्ता को ही मज़बूत करती दिख रही हैं। ऐसे में संघ के पितृसत्तात्मक दृष्टिकोण को गीता प्रेस से अलग करना मुश्किल दिखता है।

### पतिव्रता, बलात्कार तथा वैवाहिक बलात्कार

उन्नीसवीं सदी के दौरान जब हिंदू मध्यवर्ग की स्त्रियों के लिए बाहर की दुनिया मंदिर या धार्मिक स्नान और मेले या मज़ारों पर लगने वाले उर्स तक सीमित थी, उस वक़्त उनकी यौन-शुद्धता की 'रक्षा' के लिए भारतेंदु हरिश्चंद्र का सुझाव आया, 'स्त्रीजनों का मंदिर से सहवास निवृत्त किया जाए।'[9] बालकृष्ण भट्ट को अचानक यह अहसास हुआ कि, 'घर डफलची ग़ाज़ी मियाँ का गीत गाया करता है। पाधाजी, पण्डाजी, पुजारीजी, गोसाईंजी, बहूजी को चंगुल में फँसाए तन मन धन अर्पण कराए सर्वस्व अपनाए लेते हैं।'[10]

---

[7] अक्षय मुकुल (2015), वही : 348-349.

[8] अभय कुमार दुबे ( 2019) : 240.

[9] हेमंत शर्मा (1989) : 974.

[10] बालकृष्ण भट्ट, *प्रतिनिधि संकलन* : 102.

अचानक ही हिंदी नवजागरण के लेखकों को यह लगने लगा कि हिंदू स्त्री की यौन-शुद्धता ख़तरे में है। चूँकि 'हिंदू राष्ट्र' पूरी तरह इन स्त्रियों की यौन शुद्धता पर ही टिका हुआ था, ऐसे में स्त्रियों की यौनिकता पर नियंत्रण के प्रयास और भी तेज़ हो गये। हिंदू स्त्रियों के सतीत्व' और उनकी पवित्रता का आग्रह बढ़ता गया और पर्दे की व्यवस्था को एक अभिन्न भारतीय परम्परा के रूप में चित्रित किया जाने लगा। हिंदी के उल्लेखनीय साहित्यकारों ने स्त्रियों का ऐसा चित्रण शुरू किया मानो किसी भी सभ्य परिवार की स्त्री का घर से बाहर सार्वजनिक स्थानों पर घूमना एक ऐसा अपमानजनक कृत्य है जिससे परिवार के सम्मान को ठेस लगती है। बाहर निकलने वाली स्त्रियों को बोली-ठोली और छींटा-कशी का भय दिखाया गया। तरह-तरह के उपन्यास जैसे— *लक्ष्मी देवी, लीलावती* या *आदर्श सती, चपला व नव्य समाज चित्र, स्वतंत्र रमा और परतंत्र लक्ष्मी* अथवा *सती सुखदेवी* आदि लिख कर स्वतंत्र जीवन जीने वाली स्त्रियों के व्यभिचार की राह पड़ने और अंततः पतन को दिखाया जाने लगा। हिंदी नवजागरण के दौर के ये शिक्षाप्रद उपन्यास स्त्री यौनिकता पर जो नियंत्रण लगा रहे थे उसने गीता प्रेस के साहित्य में रूपांतरित होकर बलात्कार के विमर्श का रूप ले लिया। *सती सुकला,* 'कंसमाता पद्मावती की कथा', 'पतिव्रता तथा बलात्कार' जैसे लेखों तथा पुस्तकों में बलात्कार को लेकर 'हिंदुत्व' की जो सैद्धांतिकी रची गयी है, वह हिंदी नवजागरण के स्त्री संबंधी लेखन का ही परिष्कृत रूप है। गीता प्रेस में प्रकाशित इन लेखों तथा कहानियों में स्थापित किया गया है कि जो भी स्त्री घर से बाहर निकलती है, वह पतिव्रता नहीं रह जाती। जिस स्त्री का पातिव्रत्य नष्ट हो गया है, उसे बलात्कार से कोई नहीं बचा सकता— यह भी इन किताबों में बताया गया। इस पातिव्रत्य के नष्ट होने के सैकड़ों कारण हो सकते हैं, जैसे— किसी पुरुष को देख भर लेना, घर से अकेले बाहर निकलना, सार्वजनिक स्थानों पर शृंगार करके निकल जाना या कोई रोज़गार करना। गीता प्रेस का स्त्री संबंधी साहित्य, इन सभी परिस्थितियों में होने वाले बलात्कार को तर्कसंगत मानता है और इसे स्त्रियों द्वारा किये गये 'पाप के दण्ड' के रूप में देखता है। बतौर उदाहरण *सती सुकला* नामक पुस्तक में वर्णित 'कंस माता पद्मावती की कथा' को लिया जा सकता है। यह कथा पति की अनुपस्थिति में बाहर जाने वाली एक स्त्री के बलात्कार को तार्किक ठहराती है। कथा में सज धज कर अकेले घूमने निकली पद्मावती के रूप पर रीझकर गोभिल नाम का एक दैत्य उसका बलात्कार करता है। दैत्य गोभिल पद्मावती का बलात्कार करने के उपरांत उससे जो कहता है, वह ध्यान देने योग्य है, 'तुम बिना पति के शृंगार करके इस एकांत स्थान में क्यों आयी? किस मतलब से किसको दिखाने के लिए तुमने ऐसा किया था? ... मैंने दण्ड के द्वारा तुम्हारे पाप का फल प्रदान किया है।'[11]

'हिंदुत्व' की विचारधारा द्वारा प्रस्तुत यह एक चिंताजनक तर्क है। यह तर्क घर से बाहर शृंगार करके अकेले निकलने वाली छात्राओं, कामकाजी स्त्रियों आदि सभी के बलात्कार को एक सैद्धांतिक सम्बल दे सकता है, यदि इसे उनके 'पाप' का दण्ड कहा जा सके। इस तर्क के मुताबिक़ स्त्रियों का पुरुषों के सम्मुख जाना ही बलात्कार को निमंत्रण देना है। *नारी धर्म* नामक पुस्तक में जयदयाल गोयंदका लिखते हैं, 'अकेले पुरुष के साथ एकांत में कभी वार्तालाप या वास नहीं करना चाहिए, चाहे पिता, भाई, पुत्र ही क्यों न हो, क्योंकि इंद्रियों का समुदाय बलवान है, वह बुद्धिमानों को भी मोहित कर देता है।'[12] भारतेंदु हरिश्चंद्र भी 'शास्त्रों' के इस तर्क से पूरी तरह सहमत थे, तभी तो वे लिखते हैं, '... 'स्त्रियः स्वभावतो दुष्टाः' यह आप ही का शास्त्र कहता है। मनु जी ने भी कहा कि 'नारी घी का घड़ा है और पुरुष अग्नि है, जहाँ दोनो रहेंगे पिघलेंगे'।[13]

---

[11] रामनाथ सुमन (2010) : 27.

[12] जयदयाल गोयंदका (2013) : 16.

[13] ओमप्रकाश सिंह (सं.) (2008) : 96.
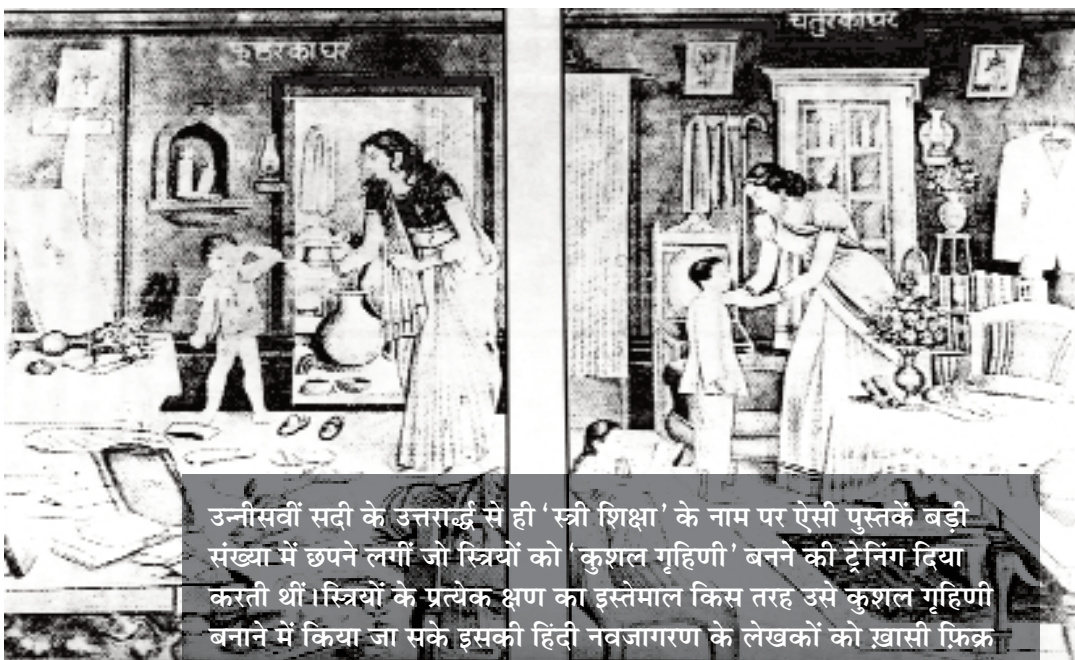
**उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध से ही 'स्त्री शिक्षा' के नाम पर ऐसी पुस्तकें बड़ी संख्या में छपने लगीं जो स्त्रियों को 'कुशल गृहिणी' बनने की ट्रेनिंग दिया करती थीं। स्त्रियों के प्रत्येक क्षण का इस्तेमाल किस तरह उसे कुशल गृहिणी बनाने में किया जा सके इसकी हिंदी नवजागरण के लेखकों को ख़ासी फ़िक्र थी। इसे लेकर *भाग्यवती, देवरानी-जेठानी की कहानी, सास-बहू, स्त्री-शिक्षा, स्त्री सुबोधिनी* जैसी तरह-तरह की किताबें लिखी जा रही थीं। गीता प्रेस के स्त्री संबंधी साहित्य में भी हिंदी नवजागरण के ज़माने से चला आ रहा 'चतुर स्त्री' और 'फूहड़ स्त्री' का यह वर्गीकरण जारी रहा। केवल बदले हुए समय के हिसाब से कुछ नवीन पक्षों को इसमें समाहित कर लिया गया।**

तो फिर बलात्कार से बचने का उपाय क्या है?[14] गीता प्रेस की किताबें सुझाती हैं कि, 'पातिव्रत्य धर्म का अधिक समय तक पालन करने पर नारी में अपूर्व शक्ति आ जाती है, फिर तो देवता भी उससे डरते हैं। कोई कामी पुरुष उससे बलात्कार करने जाकर जीवित नहीं रह सकता।[15] इंटरनेट पर ऐसे तमाम धार्मिक लेख और यूट्यूब पर विडियो मिल जाएँगे जो इन्हीं तर्कों की पुष्टि करते हैं। बदले हुए समय में संचार माध्यमों ने पातिव्रत्य और बलात्कार के इस तर्क को घर-घर पहुँचा दिया है। गीता प्रेस का यह तर्क— जहाँ स्त्री में अगर पातिव्रत्य की शक्ति है तो उसका बलात्कार सम्भव ही नहीं है— निश्चित रूप से बलात्कारी को नैतिक द्वंद्व से मुक्ति देने वाला है। यह तर्क एक, दो, तीन या चार साल की वे बच्चियाँ, जिनके बलात्कार की ख़बरें लगभग रोज़ाना अख़बारों में होती हैं, के बलात्कार को भी नैतिक रूप से जायज़ ठहराता है। सम्भवत: वे इसी के लायक़ थीं, क्योंकि निश्चित रूप से बाल-विवाह न होने के कारण वे पातिव्रत्य का पालन नहीं कर रही थीं! दूसरों के खेतों, घरों में जाकर काम करने वाली दलित तथा निम्नवर्गीय स्त्रियों के साथ होने वाला बलात्कार तो सम्भवत: बलात्कार भी नहीं माना जाएगा क्योंकि वे तो पहले से ही अपवित्र हैं! हनुमानप्रसाद पोद्दार लिखते हैं, 'लज्जा

[14] वही.

[15] हनुमानप्रसाद पोद्दार (2013) : 86.

छोड़कर पुरुषालयों में निःसंकोच घूमने-फिरने से पवित्र पातिव्रत्य में क्षति पहुँचती है; क्योंकि इस स्थिति में नारी को हज़ारों पुरुषों की विकृत दूषित दृष्टि का शिकार होना पड़ता है ... उस नारी के मन में निश्चय ही चंचलता होगी, काम विकार उत्पन्न होगा और यदि उस विकार की स्थिति में अवसर प्राप्त हुआ तो पतन भी हो जाएगा।'[16]

सार्वजनिक स्थानों को 'पुरुषालय' कहने वाले गीता प्रेस का निम्नवर्गीय कामकाजी स्त्रियों के संबंध में 'मन की चंचलता' या अपवित्रता का यह तर्क नया नहीं है। उमा चक्रवर्ती ने दिखलाया है कि किस तरह कामकाजी दलित तथा उच्च जाति की स्त्रियों के बलात्कार की तुलनात्मक गम्भीरता का आकलन उनकी 'पवित्रता' के आधार पर करते हुए उन्नीसवीं सदी में मद्रास न्यायालय के एक जज ने फ़ैसला दिया था, 'ऊँची जाति की स्त्री अपनी इज़्ज़त पर निम्न जाति (उदाहरणार्थ चाण्डाल अथवा परिया) का साया पड़ने देने की अपेक्षा मृत्यु के गले लगना अधिक श्रेयस्कर समझेगी। चरित्र की कमज़ोर अथवा जिसका पवित्रता से दूर-दूर तक कोई नाता नहीं है, वैसी स्त्रियों के साथ यदि ज़ोर-ज़बरदस्ती होती है तो दोषी पुरुष को ज़रूर दण्डित किया जाना चाहिए, लेकिन इसमें कोई शक नहीं कि ऐसी स्त्रियों को पहुँचने वाला नुक़सान ऊँची जाति की स्त्री को पहुँचने वाले नुक़सान की तुलना में कुछ भी नहीं है।'[17]

बलात्कार को 'पवित्रता' से जोड़ कर देखने वाले इन तर्कों की जद में दोनों तरह की स्त्रियाँ हैं। जहाँ यह तर्क बाहर जा कर काम करने वाली स्त्री को सहज ही 'चरित्र की कमज़ोर' घोषित करते हुए उसके बलात्कार के प्रति एक मानसिक स्वीकृति का वातावरण तैयार करता है, वहीं मध्यवर्गीय घर में रहने वाली 'पवित्र' स्त्रियों के लिए बलात्कार के उपरांत एकमात्र मृत्यु का विकल्प छोड़ता है। *कल्याण* के नारी अंक में प्रकाशित कहानी 'सती कमला' ऐसी ही है। स्नान के लिए गयी नायिका कमला को एक पुरुष बलपूर्वक स्पर्श कर लेता है। जिससे कमला की 'पवित्रता' नष्ट हो जाती है। फिर तो 'सती कमला' को नदी में डूब कर अपना पातिव्रत्य सिद्ध करना पड़ता है।[18] बलात्कार की पीड़िता को ही इसका दोषी मानने तथा दण्ड देने की यह मानसिकता इसी तरह के 'धर्म' की उपज है। *सती सुकला* नामक पुस्तक में दैत्य गोभिल द्वारा बलात्कृत पद्मावती नाम की स्त्री को यमराज जो सज़ा देते हैं, उसे देखिए। यहाँ पति की अनुपस्थिति में श्रृंगार करके निकलना 'स्वामी के साथ धोखा' करना माना गया है, जिसकी पहली सज़ा बलात्कार के रूप में पद्मावती को मिलती है और दूसरी सज़ा मरने के बाद यमराज के द्वारा :

> तदनंतर यमराज के दूत आये और मेरी जीवात्मा को साँकल के दृढ़ बंधन में बाँधकर यमपुरी को ले चले। मार्ग में जब मैं अत्यंत दुखी होकर रोती, तब वे मुझे मुगदरों से पीटते और दुर्गम-मार्ग से ले जाकर कष्ट पहुँचाते थे। बीच-बीच में मुझे फटकारें भी सुनाते जाते थे। उन्होंने मुझे यमराज के सामने ले जाकर खड़ा कर दिया। महात्मा यमराज ने बड़ी क्रोधपूर्ण दृष्टि से मेरी ओर देखा और मुझे अंगारों की ढेरी में फेंकवा दिया। उसके बाद मैं कई नरकों में डाली गयी। मैंने अपने स्वामी के साथ धोखा किया था, इसलिए एक लोहे का पुरुष बना कर उसे आग से तपाया गया और मेरी छाती पर सुला दिया गया। नरक की प्रचण्ड आग में तपायी जाने पर मैं नाना प्रकार की पीड़ाओं से अत्यंत कष्ट पाने लगी। असिपत्र वन में पड़ कर मेरा सारा शरीर छिन्न-भिन्न हो गया। फिर मैं पीब, रक्त और विष्ठा में डाली गयी। कीड़ों से भरे कुण्ड में रहना पड़ा। आरी से मुझे चीरा गया। शक्ति नामक अस्त्र का भली-भाँति मुझ पर प्रहार किया गया।[19]

---

[16] हनुमानप्रसाद पोद्दार (2012) : 86-87.

[17] उमा चक्रवर्ती (2011) : 116.

[18] 'सती कमला', *कल्याण,* नारी अंक (2013) : 861-862.

[19] 'पातिव्रत्य के त्याग का कुपरिणाम', *सती सुकला* : 31-32.

यहाँ पद्म पुराण में वर्णित तुलसी विवाह की कथा का उल्लेख अनुचित न होगा जिसे गीता प्रेस ने अपने स्त्री-संबंधी साहित्य से बाहर ही रखा है। *पद्म पुराण* में वर्णित यह कथा कुछ इस तरह है :

> एक समय जालंधर नामक राक्षस ने देवताओं की नाक में दम कर रखा था। किसी भी उपाय से देवता उसे मार नहीं पा रहे थे। इसका रहस्य था उसकी पत्नी वृंदा का पतिव्रता धर्म। इसी पतिव्रता धर्म के प्रभाव से जालंधर अजेय बना हुआ था। सब तरह से हार कर देवगण विष्णु के पास गये। देवताओं की प्रार्थना सुनकर विष्णु ने वृंदा का पतिव्रता धर्म भंग करने का निश्चय किया। विष्णु जालंधर का रूप धरकर वृंदा के पास गये और उसका सतीत्व नष्ट कर दिया। उधर वृंदा का पति जालंधर जो देवताओं से युद्ध कर रहा था, पत्नी की यौन शुचिता नष्ट होते ही मारा गया। जब वृंदा को विष्णु के छल का पता चला तो उसने उन्हें यह शाप दिया कि तुमने मेरा सतीत्व भंग किया है, अत: तुम पत्थर के बनोगे। विष्णु शालिग्राम पत्थर में बदल गये और वृंदा सती हो गयी। जिस स्थान पर वह सती हुई वहाँ तुलसी का पौधा उत्पन्न हुआ। तुलसी के इस पौधे से शालिग्राम पत्थर का विवाह कराने पर विष्णु को शाप से मुक्ति मिली और यह दिन देवोत्थान एकादशी कहा गया।

आश्चर्य नहीं कि गीता प्रेस ने स्त्री संबंधी उपदेश-पुस्तकों से इस तरह के पौराणिक प्रसंगों को बाहर ही रखा। निश्चित रूप से वह इन कथाओं को 'हिंदुत्व' की अपनी आधुनिक सैद्धांतिकी के अनुरूप नहीं पा रहा था। इस तरह की कथाएँ 'मर्यादापुरुषोत्तम' की उनकी सैद्धांतिकी के प्रतिकूल तो थी ही, साथ ही गीता प्रेस की दूसरी परिकल्पनाओं से भी यह मेल नहीं खाती थी। इस कथा में वृंदा का 'पातिव्रत्य' भी उसे बलात्कार से बचा नहीं पाया, साथ ही विष्णु की छवि भी ख़राब होती है। बलात्कृत वृंदा का पातिव्रत्य गीता प्रेस की पतिव्रताओं की तरह देवताओं को भी जलाकर राख कर देने में समर्थ नहीं था। अत: गीता प्रेस ने वृंदा को अपनी पतिव्रता की सूची में स्थान नहीं दिया और ऐसे प्रसंगों को छोड़ देना ही उचित समझा।

भागवत के भी प्राय: सभी 'कामुक' प्रसंगों को गीता प्रेस के स्त्री संबंधी साहित्य से बाहर रखा गया है, ठीक हिंदी नवजागरण की तरह। जहाँ मुख्यधारा का हिंदी साहित्य तथा पत्रिकाएँ कृष्णलीला के शृंगारिक प्रसंगों तथा गोपियों के नग्न चित्रों से भरी रहती थीं किंतु लड़कियों का *प्रेमसागर* पढ़ना भारतेंदु को उचित नहीं लगता था। कृष्ण द्वारा गोपियों के अंतरंग दायरे का अतिक्रमण सम्भवत: न तो हिंदी नवजागरण, न ही गीता प्रेस में स्त्रियों की यौन शुद्धता पर ख़तरे के प्रतीक के रूप में देखा गया। यहाँ ईश्वर द्वारा स्त्रियों के अंतरंग क्षेत्र में सेंध या छेड़-छाड़ इसलिए भी आपत्तिजनक नहीं है क्योंकि सम्भवत: ईश्वर के संसर्ग से स्त्रियों की 'शुद्धता' पर कोई ख़तरा नहीं था। हालाँकि हमेशा ही बलात्कृता से प्राण त्याग देने के आदर्श पर खरे उतरने की कल्पना गीता प्रेस भी नहीं करता था सो उसने स्त्री को शुद्ध करके अपना लेने का उदार उपाय भी सुझाया है। नारी-शिक्षा में बलात्कृत स्त्री के विषय में हनुमान प्रसाद पोद्दार लिखते हैं, 'वह (स्त्री) शास्त्रीय प्रायश्चित करके अपनी दैहिक अशुद्धि को दूर करके फिर पूर्ववत् शुद्ध हो जाती है।'[20]

यहाँ बलात्कार में स्त्री के साथ हुई हिंसा या उसके अंतरंग दायरे के अतिक्रमण का प्रश्न महत्त्वपूर्ण नहीं है। महत्त्वपूर्ण है, उसका 'अशुद्ध' होना। ईश्वर या पति द्वारा किये जाने वाले बलात्कार में जहाँ दैहिक अशुद्धि विचारणीय नहीं है, उससे हिंदुत्व की सैद्धांतिकी को कोई परहेज़ नहीं। ऐसे में पति द्वारा किये जानेवाले बलात्कार से बचाव का तो कोई सवाल ही नहीं है, क्योंकि बलात्कार से बचने के लिए जिस 'पातिव्रत्य' की यह बात कर रहे हैं वह तो पति के समक्ष बेशर्त समर्पण पर टिका है। यदि वह यह नहीं करती तो बाहर की दुनिया में उसके लिए अनगिनत बलात्कारी मौजूद है। असल में 'हिंदुत्व' की यह आधुनिक आचारसंहिताएँ एक ऐसी 'बलात्कार-संस्कृति' का निर्माण कर रही हैं जहाँ स्त्री के साथ किसी भी तरह की यौन-हिंसा के तार्किक आधार गढ़े जा सकते हैं। बलात्कार तो

[20] हनुमान प्रसाद पोद्दार (2013) : 86.

वह भय है जिसका प्रयोग स्त्रियों को घरों के भीतर बंद रखने के लिए किया जाता है। इसीलिए इसमें वैवाहिक बलात्कार को लेकर कोई दुविधा नहीं है। यहाँ बलात्कार से समस्या नहीं है, इस सैद्धांतिकी को मुख्य चिंता है स्त्री के शरीर पर पति का मालिकाना सुनिश्चित करने की। वास्तव में यह बलात्कार का धर्मसम्मत संस्थाकरण है जहाँ पति को बलात्कार की अधिकृत संस्था बना दिया गया है। यहाँ पति अगर बलात्कारी है तो उससे बचाव का कोई उपाय नहीं है, न बलात्कार होने पर क़ानूनी प्रक्रिया या तलाक़ जैसा कोई विकल्प। हनुमान प्रसाद पोद्दार की मानें तो तलाक़ का क़ानून बनाने से '... विवाह क़ानूनसम्मत एक रखेली रखने का रूप'[21] हो कर रह जाएगा। ऐसे में स्त्री के लिए उचित यही है कि वह इस संस्थागत बलात्कार को चुपचाप स्वीकार कर ले! यह हमें उन्नीसवीं सदी के फूलमणि केस की याद दिलाता है जब ग्यारह वर्ष की फूलमणि के साथ उसके 35 वर्षीय पति द्वारा यौन संबंध स्थापित किये जाने से हुई उसकी रक्तस्रावजन्य अकाल मृत्यु ने ब्रिटिश शासन को सहवास क़ानून में संशोधन करने को प्रेरित किया था।[22] इस पर बालगंगाधर तिलक सहित देशभर के राष्ट्रवादी भड़क उठे। हिंदी नवजागरण के लेखकों में प्रतापनारायण मिश्र ने इस सहवास क़ानून का सबसे मुखर विरोध किया था और इस विषय पर तमाम लेख अपने अख़बार में प्रकाशित किया करते थे। इसे उन्होंने अपने निजी दायरे में हस्तक्षेप माना था।[23] यहाँ न तो उस ग्यारह वर्षीय बालिका का जीवन महत्त्वपूर्ण था और न ही बलात्कार का प्रश्न। इनकी चिंता अपने निजी दायरे (स्त्री की यौनिकता) पर नियंत्रण को बनाए रखने तक सीमित थी, जो हिंदू पुरुषों के अपने स्त्रियों पर मालिकाने की व्यवस्था पर निर्भर थी।

**पतिव्रताकरण**

'पतिव्रता वही है जो पति के दुखी होने में दुखी, पति के सुखी होने से सुखी ... और पति के मरने में तत्काल सहगमन करती है।'[24]

'जहाँ पति कहे, वहीं बैठो, जब कहें, तभी उठो, जो कहे, सो ही करो, अपने मन से किसी भी दूसरी बात को बना कर पति की इच्छा को न बिगाड़ो।'[25]

'यदि स्त्री अपने पति में भगवान की दृढ़ भावना कर ले ... फिर किसी प्रकार की अशांति की भावना नहीं रहती। इस से स्त्रियों के देश, धर्म और जाति की रक्षा सहज ही हो सकती है।'[26]

उन्नीसवीं सदी की नवीन परिस्थितियाँ सार्वजनिक जीवन में स्त्री के लिए हस्तक्षेप के अवसर उपलब्ध करा रही थीं। ऐसे में घर के भीतर स्त्री की भूमिकाओं को ज़ोर-शोर से दुहराया जाने लगा। 'पतिव्रता' की भूमिका इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण थी। इस बात पर ज़ोर दिया जाने लगा कि स्त्री का जीवन ही पति की सेवा के लिए है। जिस तरह बीसवीं सदी के राष्ट्रवादियों ने स्त्री की 'मातृत्व' संबंधी भूमिका पर सर्वाधिक ज़ोर दिया था, लगभग वही महत्त्व उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में 'पतिव्रता' पत्नी की छवि को प्राप्त था। नागरी हिंदी भी इस वक़्त 'नागरी माता'[27] कम 'लेडी हिंदी देवी' के रूप में ही अधिक स्वीकृत थी। संस्कृत की बेटी 'श्रीमती हिंदी देवी' की तुलना में उर्दू को अनैतिक कसबी (वेश्या) ठहराया गया।[28] गीता प्रेस में हिंदू स्त्री की इसी 'पतिव्रता' छवि पर ज़ोर दिया गया है। स्त्री

[21] वही : 106.
[22] तनिका सरकार और सुमित सरकार (सं.) (2011).
[23] देखें, *प्रतापनारायण मिश्र ग्रंथावली.*
[24] वसुधा डालमिया एवं संजीव कुमार (2014) : 60.
[25] हनुमान प्रसाद पोद्दार (2013) : 25.
[26] हनुमान प्रसाद पोद्दार (2012) : 123.
[27] *प्रतापनारायण मिश्र ग्रंथावली* : 39.
[28] क्रिस्टोफ़र आर किंग (1944) : 135-37.

पति के प्रति अपनी भूमिका ठीक से निभा ले इसी में देश, धर्म, जाति सभी का भला हो जाएगा। शाकम्बरी जयाल ने हिंदू पत्नी का 'सहधर्मिणी' से पतिव्रता के रूप में संक्रमण दर्शाया है।[29]

जहाँ सहधर्मिणी का दर्जा पति की सच्ची और भरोसेमंद दोस्त का था जो अपनी स्वतंत्र न्यायदृष्टि रखती थी। वहीं पतिव्रता एक मूक दासी से अधिक कुछ न थी। शालिनी शाह इस प्रक्रिया को पतिव्रताकरण का नाम देती हैं जिसमें स्वतंत्र न्यायदृष्टि रखने वाली हर मिथकीय स्त्री पात्र को 'पतिव्रता' के साँचे में ढाल लिया गया। इसके लिए तरह-तरह के पतिव्रता माहात्म्य आख्यान गढ़े गये तथा दो स्त्रियों के मध्य 'पतिव्रता धर्म' की स्थापना करने वाले संवादों की योजना की गयी, जैसे, द्रौपदी-सत्यभामा संवाद या सीता-अनसूया संवाद। शालिनी शाह दो स्त्रियों के बीच पातिव्रत्य को लेकर गढ़े गये संवादों को पितृसत्ता का मास्टर स्ट्रोक मानती हैं क्योंकि औरतों के मुँह से कहलाई गयी ये बातें दूसरी स्त्रियों को आसानी से प्रभावित कर सकती थीं।[30] *बालाबोधिनी* पत्रिका का 'लवली-मालती-संवाद',[31] *वामाशिक्षक* की पण्डितानी और *मथुरादास* की लड़कियों का संवाद[32] आदि पतिव्रताकरण की इस प्रक्रिया को ही आगे बढ़ाते नज़र आते हैं। गीता प्रेस, गोरखपुर ने तो लगभग हज़ार पृष्ठों का *कल्याण* का 'नारी अंक' ही पतिव्रताकरण को समर्पित कर दिया है, जहाँ इतिहास में दूसरी वजहों से जानी-जाने वाली स्त्रियाँ भी 'पतिव्रता' या 'सती' बनकर रह गयी हैं।

*बालाबोधिनी* तथा गीता प्रेस की पतिव्रताओं में जिन सीता, द्रौपदी, अनसूया, अरुंधती आदि का नाम दुहराया जाता है, नारीवादी विद्वानों ने उनके पतिव्रताकरण का इतिहास खोजने की कोशिश की है। आज्ञाकारी पतिव्रताओं के रूप में पेश की जानेवाली सीता और द्रौपदी के चरित्रों का ऐतिहासिक विकास दिखाते हुए सैली सदरलैंड का तर्क है कि शुरुआती कथाओं में सीता और द्रौपदी आक्रामक स्त्रियाँ थीं। द्रौपदी अपने पतियों को नपुंसक कहने से भी नहीं हिचकिचाती।[33] वे सीता के चरित्र को अधिक महीन मानती हैं। वाल्मीकि रामायण की सीता अपने पति को धमकी देते हुए कहती है कि वह अपने शत्रुओं के अधीन बनकर अयोध्या में नहीं रहेगी और अगर राम उसे अपने साथ नहीं ले जाएँगे तो वह आत्महत्या कर लेगी।[34] सैली सदरलैंड कहती हैं कि वन जाना कहीं से भी सीता के समर्पण और आत्मत्याग को नहीं दर्शाता बल्कि यह पति के साथ रहने में अपनी बेहतरी देखने वाली सीता की ख़ुद के प्रति चिंता को दर्शाता है।[35] अयोध्याकाण्ड में तो सीता राम की मर्दानगी को ललकारती हुई उन्हें 'पुरुष के शरीर में एक स्त्री' की उपमा से नवाज़ती हैं।[36] मधु किश्वर ने अलग-अलग जाति, वर्ग, धर्म और लिंग के लोगों का सर्वेक्षण किया और यह पाया कि भारतीय स्त्रियाँ सीता को अपना आदर्श बताते वक़्त उसके दासी (पतिव्रता) रूप की प्रशंसा नहीं करतीं, बल्कि वे मानती हैं कि सीता की नैतिक दृष्टि राम से श्रेष्ठ है जिसने 'मर्यादा पुरुषोत्तम' कहे जाने वाले राम को भी लज्जित कर दिया। वे सीता को राम का हर ज़ुल्म सहने वाली मूक जीव नहीं मानतीं।[37]

इसी तरह शालिनी शाह अत्रि की पत्नी अनसूया के पतिव्रताकरण को दर्शाती हैं। वह अनसूया, जिसने अपने पति को इसलिए छोड़ दिया कि वह उसे अपने ऊपर हावी होने नहीं देना चाहती थी, जिसने तपस्या करके शिव से यह वरदान प्राप्त किया कि वह बिना पुरुष संसर्ग के एक ऐसी संतान

---

[29] शाकम्बरी जयाल (2012) : 70-90.
[30] वही.
[31] *बालाबोधिनी* : 79-83.
[32] मुंशी ईश्वरीप्रसाद तथा मुंशी कल्याणराय (1883/2009).
[33] सैली सदरलैंड (1989) : 63-79.
[34] वही.
[35] वही.
[36] वही.
[37] मधु किश्वर (2000) : 285-308.

प्राप्त कर सकेगी जो अनसूया के नाम पर उसके वंश को आगे बढ़ाए, उस अनसूया को हम तुलसीदास के *रामचरितमानस* में सीता को 'पतिव्रताधर्म' की शिक्षा देते हुए देखते हैं।[38] इसी तरह अरुंधति जिसे अपने पति वशिष्ठ की उपेक्षा करने के कारण आसमान में एक छोटा लाल तारा बनकर लटकने की सज़ा मिली थी, वह भी अब महत्त्वपूर्ण पतिव्रता बनाई जा चुकी है।[39]

शालिनी शाह द्वारा इंगित पतिव्रताकरण की यह प्रक्रिया वहीं नहीं रुकी। यह न सिर्फ़ हिंदी नवजागरण के 'स्त्री सुधार' या 'स्त्री शिक्षा' संबंधी साहित्य में जारी रही, बल्कि गीता प्रेस जैसे हिंदू-मिशनरियों के साहित्य में भी पतिव्रताकरण का ब्राह्मणवादी प्रयास अभिव्यक्त होता रहा। *कल्याण* के नारी अंक में कहानियाँ रच कर कहीं भील या आदिवासी स्त्री का पतिव्रताकरण किया गया है, कहीं भक्ति आंदोलन की विद्रोहिनी भक्तिनों का। उमा चक्रवर्ती ने दक्षिण के भक्ति आंदोलन में स्त्रियों के हस्तक्षेप को 'जेंडर संबंधों का वैकल्पिक रूप' माना था, जहाँ भक्तिनें ईश्वर से लगभग बराबरी का संबंध स्थापित कर पाई थीं।[40] वहाँ भक्तिनों ने पतियों और पुजारियों द्वारा लगाई गयी रुकावटों का प्रतिरोध करते समय ईश्वर को एक सहायक के रूप में प्रस्तुत किया था।[41] उन्हें ऐसी बहुत-सी छूट हासिल थी जो सांसारिक पुरुष की पत्नी होकर न मिलती।[42] उन्हें छूट मिली थी विधवा होने से। उन्हें रजस्वला अवस्था में भी ईश्वर का नाम लेने की छूट थी। सम्भवत: 'सुमंगली' बनी रहने की इच्छा ही उन्हें भक्ति की ओर ले गयी थी।[43] लेकिन उन्नीसवीं सदी के हिंदी नवजागरण तथा गीता प्रेस की हिंदू विचारधारा स्त्रियों को भक्ति के सहारे बच निकलने की छूट नहीं देती। आधुनिक युग का 'हिंदू धर्म' स्त्री पर पहले से अधिक पैनी नज़र रखता है। *बालाबोधिनी* के लवली-मालती संवाद की लवली स्पष्ट कहती है, 'हम लोगों के तो परम देवता पति हैं। उन्हीं की सेवा से जो गति ना हुई तो बहुत नहाय धोय नेम धरम और मूरत के पूजने से क्या होगा।'[44]

आधुनिक 'हिंदुत्व' की प्रवक्ता गीता प्रेस जैसी संस्थाएँ हैं। वह जिस 'हिंदू धर्म' के नाम पर स्त्रियों का जीवन नियंत्रित कर रहा है और जिस मर्यादा और शास्त्र की दुहाई देकर उन्हें घरों में बंद रखना चाहता है वह उसी धर्म के देवी-देवताओं की पूजा-अर्चना की स्वतंत्रता भी उन्हें नहीं देता। स्त्रियाँ केवल अपने पतियों की पूजा करें, 'पति का चरणोदक लेना ही स्त्रियों का कर्तव्य है।'[45] स्त्रियों के लिए भक्ति अब परिवार के झमेलों से बच निकलने का उपाय नहीं है। आधुनिक हिंदुत्व इसे 'ढोंग से ईश्वर भजन का बहाना कर पति सेवा से पिण्ड छुड़ाना'[46] मानता है जिसकी छूट वह स्त्रियों को नहीं देना चाहता।

### सार्वजनिक और घरेलू क्षेत्र का द्वंद्व : गृहिणी स्त्री, वैरागी पति

'स्त्रियाँ किस लिए हैं— हमारे शास्त्रों के अनुसार मर्द को सुख पहुँचाना इनका मुख्य काम है— 'न स्त्रीस्वातंत्र्यमर्हति' मनु के इस वाक्य का भी यही प्रयोजन सिद्ध होता है। ... स्त्रियाँ पुरुषों के सुख के लिए हैं अच्छी तरह स्पष्ट है।'[47]

---

[38] शालिनी शाह (2012).
[39] वही.
[40] उमा चक्रवर्ती (1989) : 50-51-52.
[41] वही : 28.
[42] वही.
[43] वही.
[44] *बालाबोधिनी* : 82.
[45] हनुमान प्रसाद पोद्दार (2013 क) : 18.
[46] हनुमान प्रसाद पोद्दार (2013 क) : 6.
[47] बालकृष्ण भट्ट (2009 ) : 131-32.

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध से ही 'स्त्री शिक्षा' के नाम पर ऐसी पुस्तकें बड़ी संख्या में छपने लगीं जो स्त्रियों को 'कुशल गृहिणी' बनने की ट्रेनिंग दिया करती थीं।[48] स्त्रियों के प्रत्येक क्षण का इस्तेमाल किस तरह उसे कुशल गृहिणी बनाने में किया जा सके इसकी हिंदी नवजागरण के लेखकों को ख़ासी फ़िक्र थी। इसे लेकर भाग्यवती, देवरानी-जेठानी की कहानी, सास-बहू, स्त्री-शिक्षा, स्त्री सुबोधिनी जैसी तरह-तरह की किताबें लिखी जा रही थीं। गीता प्रेस के स्त्री संबंधी साहित्य में भी हिंदी नवजागरण के ज़माने से चला आ रहा 'चतुर स्त्री' और 'फूहड़ स्त्री' का यह वर्गीकरण जारी रहा। केवल बदले हुए समय के हिसाब से कुछ नवीन पक्षों को इसमें समाहित कर लिया गया।[49]

उन्नीसवीं सदी में पण्डित गौरी दत्त द्वारा लिखी गयी 'देवरानी जेठानी की कहानी' में एक फूहड़ बहू की दिनचर्या कुछ ऐसी बताई गयी थी, 'यहाँ दौलतराम की बहू बड़ी भोर उठके गौ की धार काढ़ती। गोबर पाथती। नहाती न धोती। चर्खा लेकर बैठ जाती। और कभी-कभी दाल दलती। अनाज फटकती। आटा छानती। दस-दस और बीस-बीस मन अनाज दुकान से इकट्ठा आ जाता था। उसे अकेले बोरियों और कट्टों में भर देतीं।' वहीं कहानी की नायिका छोटेलाल की बहू के काम कुछ नये ढंग के थे, जिनमें मेहनत से ज़्यादा प्रबंधन ज़रूरी था जिसकी शिक्षा स्त्रियों के लिए लिखी गयी यह आधुनिक किताबें देती थी, 'छोटेलाल की बहू ... सबेरे उठते ही बुहारी देती। चौका-बासन करके दूध बिलोती। फिर नहा-धोके दो घड़ी भगवान का नाम लेती। रोटी चढ़ाती। जब लाला छोटेलाल रोटी खा के दफ़्तर चले जाते, थोड़ी देर पीछे दौलतराम और उसका बाप दुकान से खाने आते। जब वह खा लेता और सास-जिठानी भी खा चुकतीं तब सबसे पीछे आप रोटी खाती।'[50]

इस विवरण में काम तो पुराने ढंग की स्त्री भी कर रही थी लेकिन उसे न तो नहा धोकर ख़ुद को साफ़ रखना आता था, न ही परिवार के पुरुषों के खाने पीने का प्रबंध वह इतनी कुशलता से कर पा रही थी कि उन्हें घरेलू जीवन में किसी तरह की परेशानी न हो। इन किताबों की नायिका यह आधुनिक और कुशल गृहिणी ही बनती थी। बालकृष्ण भट्ट इसी गृहिणी की प्रशंसा करते हुए लिखते हैं, 'घर की स्त्रियाँ सुलक्षणा लक्ष्मी रूप हुई तो उस गृहस्थ की गृहस्थी के सामने स्वर्ग सुख भी अल्प है। वही फूहड़ हुई तो वह घर क्या वरन् नरक से भी बुरा है।'[51]

यहाँ हिंदी नवजागरण के लेखकों की स्वर्ग सुख जैसी गृहस्थी की आकांक्षा देखी जा सकती है, जहाँ स्त्री से परिवार के पुरुष-सदस्यों की सुख-सुविधा के लिए चौबीसों घंटे तैनात रहने की अपेक्षा है। यह विडम्बना ही है कि स्त्री द्वारा उपलब्ध कराए जा रहे बेगार के सहारे सबेरे-सबेरे रोटी खाकर दफ़्तर चले जाने को उत्सुक हिंदी नवजागरण के लेखक भी गीता प्रेस के समान ही स्त्री को मुक्ति या देशोन्नति में बाधक मानते थे। वही गृहस्थी जो स्त्री के लिए धर्म थी, पुरुष के लिए जंजाल हो जाती थी। प्रतापनारायण मिश्र ने लिखा, 'जगत में लाखों मनुष्य ऐसे हैं कि यदि उन्हें घर के धंधों से छुट्टी मिले तो पृथ्वी का बहुत बड़ा भाग मंगलमय कर दें। ... ऐसों के लिए स्त्री क्या है? एक स्वेच्छाचारी सिंह के लिए हाथ भर की ज़ंजीर।'[52]

*कल्याण* के 'नारी अंक' में 'सती जरत्कारु की कथा है जिसमें पत्नी को गर्भवती करके ऋषि जरत्कारु उसका परित्याग कर देते हैं, क्योंकि, 'ऋषि ने देख लिया था कि पत्नी गर्भवती हो चुकी है पितरों का कार्य सम्पूर्ण हो चुका। वे परम विरक्त अब गृह-प्रपंच में रहना नहीं चाहते थे।'[53] 'पितरों

---

[48] गरिमा श्रीवास्तव (2014).
[49] पण्डित गौरीदत्त (1872/2006) : 35.
[50] वही : 32.
[51] बालकृष्ण भट्ट (2009) : 132-32.
[52] विजयशंकर मल्ल (संवत् 2049) : 140.
[53] *कल्याण* (नारी अंक) : 509.

का कार्य सम्पन्न हो चुका था' अर्थात् अब परित्यक्ता स्त्री जिस बच्चे को जन्म देने वाली थी उसके पालन-पोषण का ज़िम्मा उस स्त्री का था और ऋषि जरत्कारु जो गृह प्रपंच में रहना नहीं चाहते थे बिना किसी परेशानी के उनके पितरों का वंश भी चलता रहता। निजी और सार्वजनिक का यह एक आकर्षक विभाजन था। जहाँ ऋषि का वंश उनकी पत्नी सँभालेगी और वे बाहर की दुनिया में अपनी मुक्ति की साधना करेंगे। अंग्रेज़ों की देखा-देखी यह बात हिंदी नवजागरण के मध्यवर्गीय लेखकों की समझ में आ गयी थी कि यदि घर की ज़िम्मेदारी से पूरी तरह मुक्त हुआ जा सके और स्त्री के श्रम पर नियंत्रण करके उससे घरेलू क्षेत्र का प्रबंधन कराया जा सके, तो बाहर की दुनिया उनके एक्सप्लोर करने के लिए निर्द्वंद्व खुली हुई है। इंग्लैंड में घरेलू क्षेत्र से पुरुषों को मुक्त रखने वाली 'विक्टोरियन गृहिणी' उनके सामने नज़ीर के लिए मौजूद थी।

बालकृष्ण भट्ट लिखते हैं, 'योरोप में कोई ऐसी बात नहीं है जो आगे बढ़ने से इन्हें रोक सके बल्कि हरेक बात सामाजिक मज़हबी तथा घरेलू 'डोमेस्टिक' सब इस ढंग से रखी गयी है कि उनको अपने लिए तरक़्क़ी करने में बाधा डालना कैसा बल्कि हर तरह का आराम पहुँचाती है।'[54] ऐसे में 'गृहिणी धर्म' सार्वजनिक क्षेत्र में एकाधिकार रखने के अभिलाषी मध्यवर्गीय द्विज पुरुषों की स्त्री को 'घरेलू क्षेत्र' में बाँध देने की योजना का एक हिस्सा था। गृहस्थी 'जंजाल' है या 'नारी माया' है जैसी बातों के पीछे सार्वजनिक क्षेत्र से स्त्रियों को बाहर रखने की यह योजना काम कर रही थी।

'चतुर स्त्री' और 'फूहड़ स्त्री' की बहुस्वीकृत अवधारणा का दूसरा पहलू भी महत्त्वपूर्ण है। उन्नीसवीं सदी के औपनिवेशिक तंत्र ने नौकरियों के रूप में मध्यवर्ग के समक्ष नयी सम्भावनाएँ प्रस्तुत की थीं, जिन पर क़ब्ज़े के लिए हिंदू-मुस्लिम प्रतिस्पर्धा और तनाव ने जन्म लिया था। शिक्षा की नयी सम्भावनाओं का लाभ उठाते हुए उच्च मध्यवर्ग की कुछ महिलाओं ने व्यावसायिक उपाधियाँ भी हासिल कीं और लेखन तथा पत्रकारिता के ज़रिये सार्वजनिक क्षेत्र में हस्तक्षेप भी करना शुरू किया। हालाँकि ये स्त्रियाँ गिनती भर थीं, लेकिन पारिवारिक जीवन में सर्वाधिकारवादी मध्यवर्गीय हिंदू पुरुषों को इससे ख़तरा महसूस होने लगा था। घर की स्त्रियाँ, जिन्हें पार्थ चटर्जी मध्यवर्गीय हिंदू पुरुषों का निजी उपनिवेश कहते हैं,[55] अब न सिर्फ़ उस उपनिवेश के हाथ से निकल जाने का ख़तरा था बल्कि अब तक पुरुषों के आधिपत्य में परिवार के भीतर रहने वाली यह स्त्रियाँ पहली बार उन्हें प्रतिस्पर्धी के रूप में दिखाई देने लगी थीं। हिंदी नवजागरण के लेखन में हम बार-बार स्त्रियों के नौकरी कर लेने के डर को देखते हैं। लंदन से शिक्षित होकर आयी भारत भगिनी की सम्पादिका श्रीमती हरदेवी अपने अख़बार में उच्च शिक्षा प्राप्त करने वाली तथा मेडिकल आदि व्यावसायिक डिग्री लेने वाली महिलाओं की ख़बर को प्रमुखता से छापा करती थीं और अपने लेखन द्वारा स्त्रियों की आर्थिक स्वाधीनता का समर्थन किया करती थीं। अपने अख़बार में वे एक जगह लिखती हैं, 'अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि यह उच्च शिक्षा प्राप्त की हुई स्त्रियाँ क्या नौकरियाँ करेंगी और अपने पति को कमाकर खिलाएँगी हम पूछते हैं कि जितने सब पुरुष पढ़ते हैं क्या यह सब नौकरी ही करेंगे? इसका उत्तर यह है कि जिन को ज़रूरत है वह करते हैं।'[56]

श्रीमती हरदेवी का यह उत्तर नौकरियों के प्रति एक स्त्री लेखिका और समकालीन पुरुषों की आकांक्षाओं के बीच टकराव को दर्शाता है। स्त्री बाहर की दुनिया की कल्पनाएँ करती है, पुरुष उसे घर के भीतर क़ैद करना चाहता है। स्त्री आत्मनिर्भर बनने का स्वप्न देखती है, पुरुष इसे 'कमा कर

[54] सत्यप्रकाश मिश्र (2011) : 67.
[55] पार्थ चटर्जी (1993), वही.
[56] *भारत भगिनी*, जनवरी, 1902.
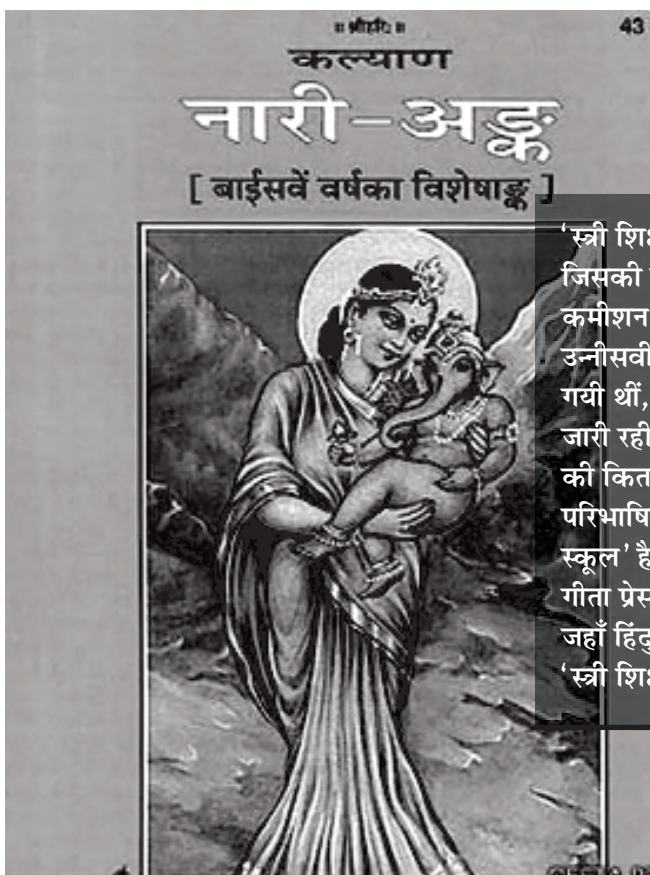
**'स्त्री शिक्षा' का वह पारम्परिक घरेलू मॉडल जिसकी पैरवी भारतेंदु हरिश्चंद्र ने हंटर कमीशन के सामने की थी और जिस पर उन्नीसवीं सदी के दौरान सैकड़ों पुस्तकें लिखी गयी थीं, गीता प्रेस के स्त्री संबंधी साहित्य तक जारी रही। गीता प्रेस द्वारा प्रकाशित स्त्री-शिक्षा की किताबें इसी घरेलू मॉडल को नये ढंग से परिभाषित करती हैं। यह ज्ञान का 'गीता प्रेस स्कूल' है। इस तरह की स्त्री शिक्षा की व्यवस्था गीता प्रेस के उस 'आदर्श राष्ट्र' में की जाएगी जहाँ हिंदुत्व का साम्राज्य होगा। तो कैसी होगी 'स्त्री शिक्षा की यह गीता प्रेस पाठशाला'?**

खिलाने' वाली स्त्री के दम्भ के रूप में देखता है और इसे अपना अपमान कहता है। इसी डर और टकराव की उपज थीं वे आचरण संहिताएँ, जो लड़कियों की स्कूली किताबों के बतौर भी लगाई गयीं और *बालाबोधिनी* जैसी स्त्री शिक्षा की पत्रिकाओं में लेख के रूप में भी प्रकाशित की गयी जिनमें एक कुशल गृहिणी' को स्त्री के कर्तव्य कहकर भोर से लेकर रात तक चलने वाले घरेलू कामों की सूची थमा दी गयी।

गीता प्रेस का समय काल अधिक विस्तृत है जो औपनिवेशिक काल से शुरू होकर वर्तमान समय तक फैला हुआ है। उसके लेखकों ने स्त्रियों को बाहर निकलते और मुक्त होते हुए देखा। उन्होंने देखा कि मध्यवर्गीय औरतें प्रदत्त घरेलू ज़िम्मदारियों को निभाते हुए भी बाहर की दुनिया में दख़ल दे पा रही हैं। अपनी पारिवारिक भूमिकाएँ निभाते हुए स्त्रियों का सार्वजनिक जीवन में दख़ल रखना गीता प्रेस के सिद्धांतकारों को पुनर्विचार की ओर ले गया। हिंदुत्व के इन आधुनिक सिद्धांतकारों की स्त्रियों को प्रत्येक क्षण व्यस्त रखने की यह रणनीति अब समीक्षा की माँग कर रही थी। घरेलू कामों को करने के बाद बच रहे अधिशेष समय को इन्होंने घरेलू उपकरणों की उपज माना। उन्होंने मिक्सर, वाशिंग मशीन तथा दूसरे घरेलू उपकरणों को इसकी जड़ के रूप में देखा। उन्हें लगा कि स्त्रियाँ इन्हीं के सहारे अपना 'गृहिणी धर्म' भी निभा लेती हैं और नौकरी भी कर लेती हैं। हम देखेंगे कि भारतीय संस्कृति तथा शास्त्रों में नारी-धर्म (तथा स्त्रियों के लिए *कल्याण* के कुछ घरेलू प्रयोग) जैसी किताबों में स्त्रियों को मशीन के बने कपड़े न पहनने और फ़ैक्टरियों-मिलों में होने वाले सारे

काम हाथ से करने की हिदायत दी गयी है, 'बाज़ार का भोजन, पूड़ी-मिठाई, चाय, बिस्कुट, बरफ़ आदि का व्यवहार न करे। स्वयं पाककला में निपुण होकर घर में ही चीज़ें तैयार करके काम में लावे। मशीन का बना हुआ आटा, चीनी, तेल, कपड़ा और चावल आदि काम में न लावे; हाथ की बनी हुई चीज़ें ही काम में लावें।'[57]

अब जब नौकरी को 'गृहिणी धर्म' की पूर्ति में बाधक बताना आसान न रह गया तब गीता प्रेस के सिद्धांतकार खुले तौर पर नौकरियों की कमी और पति-पुत्रों के वास्ते नौकरी में प्रतिस्पर्धा न करने की दुहाई देने लगे, 'यदि माताएँ पुरुषों की परवा न कर सकें, अपने पति-पुत्रों की कल्याण-कामना न करके अपनी स्वतंत्र व्यक्तिगत कल्याण-कामना करने लगेंगी, तो पुरुषों का पतन अवश्यम्भावी है ... पुरुष को बेलगाम छोड़कर नारी का उसका प्रतिद्वंद्वी होकर अपनी स्वतंत्र उन्नति करते जाना तो पुरुष को निरंकुश, अत्याचारी, स्वेच्छाचारी बनाकर उसकी ग़ुलामी को ही निमंत्रण देना है और फलत: समाज में दु:ख का ऐसा दावानल धधकाना है, जिसमें पुरुष और स्त्री दोनों के ही सुख जलकर ख़ाक हो जाएँगे!'[58]

नीति वचन से आदेश और आदेश से धमकी में बदला यह स्वर यहीं नहीं रुकता। यह नौकरीशुदा स्त्रियों के चरित्रहीन होने तक जा पहुँचता है। गीता प्रेस की सैद्धांतिकी महिलाओं के कैरियर को 'नौकरी के लिए जगह-जगह प्रेम बेचना[59] के रूप में देखती है। आश्चर्य नहीं चार-चार रुपये में स्टेशनों और फ़ुटपाथों पर बिकने वाली गीता प्रेस की इन किताबों में कामकाजी स्त्रियों के प्रति जो दृष्टि अपनाई गयी है, वह आमलोगों के रवैये को निर्धारित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती होगी।

## गीता प्रेस का सती-विज्ञान

> 'पतिव्रता वही है जो पति के दुखी होने में दुखी, पति के सुखी होने से सुखी ... और पति के मरने में तत्काल सहगमन करती है।'[60]
>
> 'मानव-जाति की नारी के लिए 'सहगमनविधान' उसकी लोकोत्तर विशेषता का द्योतक है। ... एक परम सुंदरी कोमलांगी हिंदू-नारी परलोक जाते हुए पति के साथ जाने में अपने प्रगाढ़ प्रेम को उस रूप में प्रकट करती है ... उदाहरणार्थ पति पाँच दिन से रोग शय्या पर शयन कर रहा है। नारी निराहार-व्रत के साथ उसकी परिचर्या में तल्लीन हो रही है। सुयोग्य वैद्य, हकीम और डॉक्टर उसको रोगमुक्त करने का प्रयत्न कर रहे हैं, किंतु रोग का वेग घटने के बदले बढ़ रहा है। अंत में प्राण-प्रयाण का समय आने से पहले ही नारी वहाँ से चली जाती है और अपने वास स्थान में जाकर यथोचित स्नान-दानादि करने के अनंतर सहगमन के वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होती है और पति के समीप आकर उसे आश्वासन देती है कि 'आप यहाँ के सुख-दुखादि का कोई विचार न करें, मैं आपके साथ चलूँगी और वहाँ आपकी सेवा करूँगी।' ... उधर श्मशान भूमि में काष्ठ, चंदन और श्रीफल आदि की चिता पर मृत पति सोया हुआ है। समीप में सौभाग्यचिह्न धारण की हुई शांतमूर्ति हर्षोन्मुखी नारी हाथ में जल, फल, गंध, पुष्प और अक्षत लेकर 'संकल्प' करती है कि 'मैं अपने माता-पिता और श्वसुरादि कुलों को पवित्र करने की कामना से अरुंधती आदि के समान साढ़े तीन करोड़ वर्ष पर्यंत पति के साथ निवास करने के निमित्त श्रीलक्ष्मीनारायण की प्रसन्नता के लिए सहगमन करती हूँ।' इसके अनंतर पृथक्-पृथक् स्थापित किये हुए शूर्पो (वंशपात्रों) में सौभाग्यवती स्त्रियों के उपयोगी वस्त्राभूषण, गंध, पुष्प, हरिद्रा, कुंकुम फल, फूल, मिठाई और रजत मुद्रा आदि स्थापन करके तेरह सौभाग्यवती स्त्रियों को देकर प्रार्थना करती है कि 'हे लक्ष्मीनारायण! आप इस

---

[57] जयदयाल गोयंदका (2013) : 46.

[58] हनुमान प्रसाद पोद्दार (2012) : 26.

[59] हनुमान प्रसाद पोद्दार (2012) : 23.

[60] *बालाबोधिनी* : 7.

> वायनदान से संतुष्ट होकर मुझे सहगमन करने का बल-सत्व प्रदान करें।' तत्पश्चात वस्त्र के कोने में पंचरत्न, निलांजन बाँधकर मुँह में मोती धारण करती है और अग्नि के समीप उपस्थित होकर कहती है कि 'हे अग्निदेव! आप मुझे पति के साथ जाने का सत्व मार्ग प्रदान करें। फिर 'अग्नए तेजोऽधिपतये स्वाहा' आदि 11 बार आहुति देकर अग्नि की प्रदक्षिणा करती है। तदनंतर हाथों में पुष्पांजलि लेकर 'त्वमग्ने सर्वभूतानाम' से प्रार्थना करके अग्नि में प्रवेश करती है और पति के देह को अंकस्थ करके उपस्थित जनता को हर्षोत्फुल्ल मन से शुभाशीष देकर सहगमन करती है।'[61]

हिंदू स्त्रियों के 'कल्याण' के निमित्त निकाले गये *कल्याण* पत्रिका के नारी अंक में प्रकाशित 'सती माहात्म्य' तथा ऊपर वर्णित 'प्रेरक प्रसंग' हिंदू स्त्रियों को पति के प्रति 'प्रगाढ़ प्रेम' प्रकट करने की विधि कुछ इस तरह बताता है जहाँ स्त्री सज-धजकर ब्राह्मणों को दान देती हुई और मंत्र पाठ करती हुई अपने तथा अपने पति के पूरे वंश का कल्याण करने के निमित्त ख़ुद को ज़िंदा जला ले। हनुमान प्रसाद पोद्दार प्रत्येक भारतीय नर-नारी से सती प्रथा की रक्षा की अपील करते हुए लिखते हैं, 'आज इस गये-गुज़रे ज़माने में भी स्वेच्छापूर्वक पति के शव को गोद में रखकर सानंद प्राण-त्याग करने वाली सतियाँ हिंदू समाज में मिलती हैं। ... स्त्री जाति का यह गौरव है। अत: प्रत्येक भारतीय नर-नारी को इसकी रक्षा प्राणपण से करनी चाहिए।[62]

बीसवीं सदी में होने वाली सती की घटनाओं का अध्ययन करते हुए सुरेश वैद तथा कुमकुम संगारी इसे ब्राह्मण, वैश्य तथा क्षत्रिय जातियों के आपसी गठजोड़ के रूप में देखती हैं। पति की मृत्यु के बाद चिता के साथ सती कर दी गयी स्त्रियों के साथ ही पारिवारिक सम्पत्ति पर नियंत्रण तथा सती स्थल के तीर्थ में बदल जाने से उपजी व्यावसायिक सम्भावनाएँ इसके पार्श्व में काम कर रही होती हैं। इस अध्ययन में सती की घटनाओं का विस्तार से विवेचन करते हुए इससे जुड़ी चमत्कारिक कहानियों तथा आम विश्वासों पर ध्यान दिलाया गया है।[63] यह अध्ययन 'गीता प्रेस का सती-विज्ञान' समझने में भी सहायक है। गीता प्रेस की किताबें जनसाधारण के दिमाग़ में सती चमत्कार के क़िस्से बैठाने के साथ ही इन चमत्कारों की 'वैज्ञानिक' व्याख्याएँ भी प्रस्तुत करती हैं। ये व्याख्याएँ सती की घटनाओं के पीछे की वास्तविकता तथा हत्या के पीछे ज़िम्मेदार लोगों को चिह्नित करने से रोकने के लिए हैं। 'हिंदुत्व' के यह सिद्धांतकार जो बात-बात पर विधवाओं को जल जाने का निर्देश दिया करते हैं, एक भी जला दी गयी विधवा की ज़िम्मेदारी नहीं लेते। *कल्याण* का नारी अंक जो स्त्रियों को 'राह दिखाने' के लिए निकाला गया था, उसमें स्त्रियों के सती होने की पचासों कहानियों में से किसी में भी परिवार के किसी सदस्य ने उसे नहीं जलाया बल्कि बिना किसी के आग लगाए या तो स्वयं उन स्त्रियों के शरीर से अग्नि उत्पन्न हो गयी या चिता पर डाले जाने के पूर्व ही वे चमत्कारिक रूप से मृत पाई गयीं। प्राय: सभी क़िस्से एक से हैं।

'शिवराजबाई चुप थीं। उन्होंने अपनी डेढ़ वर्ष की बच्ची को अपनी जेठानी को देकर बड़ों के पैर पर सिर रखा तथा पति के शव के समीप आकर मूर्च्छित होकर गिर पड़ीं। देखा गया तो उनका शरीर प्राण शून्य था।'[64] 'परिक्रमा समाप्त कर वह पति के सिर को गोद में लेकर चिता पर बैठ गयी। चिता को प्रज्वलित किया गया, पर वह प्रज्वलित न हुई। सती ने आर्त दृष्टि से दक्षिण दिशा की ओर देखा और तुरंत धाँय-धाँय करके चिता प्रज्वलित हो उठी।'[65] पटना के बाढ़ स्टेशन के दक्षिण ओर स्थित बेढना गाँव में सती होने की इच्छुक महिला ने अपनी 'मानसिक शक्ति' से अपनी साड़ी में आग

---

[61] पं. श्री हनुमानजी शर्मा, 'नारी-तत्त्व', *कल्याण,* नारी अंक : 105.

[62] हनुमान प्रसाद पोद्दार (2012) : 110.

[63] सुदेश वैद और कुमकुम संगारी (1997).

[64] श्री पद्मा देवी जी मिश्रा, 'सती शिवराजबाई', *कल्याण,* नारी अंक : 879.

[65] पं. श्री मुरारीलालजी शर्मा, 'श्रीबादामी देवी', *कल्याण,* नारी अंक : 881.

लगा ली। उसे मोकामा घाट पर सती करने ले जाया गया जहाँ पचास-साठ हज़ार की भीड़ 'देवी' देखने को आ पहुँची, 'पुलिस ने घाट पर व्यवस्था की, दर्शकों की ठसाठस में कितनों के डूब जाने की आशंका थी। संपती देवी पति की लाश गोद में रखकर चिता पर बैठीं। उनके हाथ में *गीता* थी। विप्रवर्ग मंगलपाठ कर रहा था। देवी ने मस्तक नीचे झुकाया ही था कि चिता जल उठी।'[66]

बिना किसी के जलाए इन 'सतियों' के अपने आप जल जाने की 'वैज्ञानिक' व्याख्या करते हुए गीता प्रेस की किताबों में कहा गया है, 'यदि किसी सती के पति वियोग के समय उसके मन की स्थिति ऐसी असाधारण हो जाए कि जिससे थाइरोड ग्रंथि पर सीधा प्रभाव पड़े और वह उसकी गर्मी को एकदम बढ़ाकर शरीर से अग्नि पैदा कर दे तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है।'[67] हनुमान प्रसाद पोद्दार आगे लिखते हैं, 'पतिगतप्राणा प्रेममूर्ति सती के हृदय में जब पति वियोग की अग्नि सुलगती है, तब उसका रूप कैसा होता है इसको हम लोग ठीक-ठीक समझ ही नहीं सकते। ऐसी हालत में गले के पास की थाइरोड गाँठ में रस का प्रवाह बढ़ जाना और उसके कारण कंधे आदि से अग्नि का फूट निकलना सर्वथा सम्भव और युक्तियुक्त है ... अतएव मेरी समझ से सती के शरीर से अग्नि का उत्पन्न होना सर्वथा सम्भव और विज्ञान सम्मत है।'[68]

1987 में रूपकँवर को सती करने वालों ने भी इन्हीं तर्कों को दुहराया था।[69] लेकिन 'जो साक्ष्य सामने आये वे उसकी हत्या की ओर संकेत करते थे : उसके एक पड़ोसी ने कहा कि वह भागकर घुड़साल में छिप गयी परंतु उसे खींच कर बाहर निकाल लिया गया और नशे के ढेर सारे इंजेक्शन लगा दिये गये। इसके बाद उसका दुल्हन की तरह शृंगार करके उसे चिता पर बैठा दिया गया।'[70] पुलिस ने सूचना होते हुए भी इसे रोकने के लिए कुछ भी नहीं किया। कुमकुम संगारी तथा सुदेश वैद ने सती प्रथा के पीछे व्यापारियों, ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों की जिस मिली भगत पर ध्यान दिलाया है जहाँ तत्काल ही सती स्थल एक तीर्थ में बदल जाता है और अच्छा ख़ासा व्यापार का ढाँचा तैयार होने लगता है, रूप कँवर के मामले में भी ऐसा ही हुआ।[71]

विद्वानों का मानना है कि सती की घटनाएँ द्विज जातियों तक ही सीमित हैं। लेकिन गीता प्रेस जैसे संगठन इसे दलितों तथा आदिवासियों तक पहुँचाने की मुहिम में लगे हुए हैं। *कल्याण* के नारी अंक में एक भीलनी को सती होते और एक दलित स्त्री को सती होने का उपदेश पाते देखा जा सकता है। 'हरिजन सती' नाम के लेख में दलित स्त्रियों को समझाया गया है कि सती होने के लिए 'किसी जाति या कुल की अपेक्षा नहीं है, उसके लिए तो चाहिए पति के प्रति एकांतिक प्रेम।'[72] एक अन्य कहानी में 'शूद्रा सेविका, क्षत्रिय रामदेवी के पति की मृत्यु होने पर अपनी मालकिन के साथ सती हो गयी। अब 'जिस स्थान पर सती ने शरीर त्याग किया था, वहाँ अब तक उन तीनों की पूजा होती है; शूद्रा की पूजा न करने पर सती असंतुष्ट हो जाती हैं।[73] ख़ुद को पुजवाने के इस प्रलोभन का आशय स्पष्ट है। गीता प्रेस का ब्राह्मणवाद अब दलित स्त्रियों को भी अपने नियंत्रण से बाहर नहीं छोड़ना चाहता। द्विज स्त्रियों से तो केवल पति के साथ जल जाने की अपेक्षा है किंतु दलित स्त्रियों से ब्राह्मणवादी पदसोपान अपने द्विज मालिकों के साथ जल कर मर जाने की भी अपेक्षा करता है।

---

[66] पं. श्री मथुरानाथजी शर्मा, साहित्यरत्न, 'सती सम्पति', *कल्याण,* नारी अंक : 877–878.
[67] हनुमान प्रसाद पोद्दार (2013) : 92.
[68] वही : 92–93.
[69] राधा कुमार (2002) : 344.
[70] *स्टेट्समैन,* 18–20.9.1987; राधा कुमार, वही : 344 पर उद्धृत.
[71] सुदेश वैद और कुमकुम संगारी (1997), वही.
[72] 'हरिजन–सती', *कल्याण,* नारी अंक, गीता प्रेस, गोरखपुर : 877.
[73] ठाकुर श्री रामप्रकाशजी रईस, 'सती रामदेवी के सतीत्व का प्रभाव', *कल्याण,* नारी अंक : 878.

**घृणित रज से रक्षित शुद्ध वीर्य**

> '... अहल्या को जब नारद जी समझाने गये तो उसने उनको ख़ूब आड़े हाथ लिया है और कहा है कि, 'स्त्री कदापि काम का वेग नहीं रोक सकती। संसार में सती स्त्री तभी तक है जब तक उनको मौक़ा नहीं मिलता। (हम विशेष लिख नहीं सकते लज्जा आती है शास्त्रों में आप इनके आचरण को देखिए) और क्या आपका चित्त ख़ुद इस बात को न कहता होगा। ... सब ऋषियों को इनका ऐसा ही ध्यान था इसी से स्त्री की ऋतुमती होने से शुद्धि लिखी है और प्रायश्चित भी थोड़ा ही लिखा है।'[74]
>
> 'इतना विचार रखो, रजस्वला का छूना तक आर्य रीति के विरुद्ध है ... ते सर्वे नर्कम् यांति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलां।'[75]

भारतेंदु हरिश्चंद्र के अनुसार स्त्री का ऋतुमती होना उसकी कामुकता का दण्ड है। स्त्री की यह कामुकता इतनी नैसर्गिक है कि ऋषि मुनियों ने माहवारी को उसकी कामुकता के दण्ड के रूप में देखा है। हिंदी नवजागरण के एक अन्य महत्त्वपूर्ण लेखक प्रतापनारायण मिश्र 'शास्त्रों' को उद्धृत करके समझाते हैं कि रजस्वला को देखने वाला भी नरक का भागी होता है, उसे छूना तो निषिद्ध है ही। प्रताप नारायण मिश्र यह तर्क अपने लेख 'बाल्य विवाह विषयक एक चीज़' में बाल-विवाह की उम्र बढ़ाकर तेरह वर्ष करने के पक्ष में दे रहे थे। इस तर्क के ज़रिये मिश्र जी यह समझा रहे थे कि रजस्वला होने के तुरंत बाद ही लड़कियों का विवाह क्यों ज़रूरी है। मासिक धर्म या स्त्री का रजस्वला होना उसी तरह एक शारीरिक प्रक्रिया है जैसे लड़कों में प्यूबर्टी। हम देखते हैं कि हिंदी नवजागरण का लेखन लड़कियों तथा लड़कों के यौवनारम्भ की इन दो शारीरिक प्रक्रियाओं के विषय में एकदम विरोधी रवैया अपनाता है। 'वीर्य के पुष्ट' होने तथा 'वीर्य की रक्षा' जहाँ भारतेंदु मण्डल तथा गीता प्रेस के लेखकों की एक अनिवार्य चिंता है, वहीं स्त्री रज से घृणा तथा उसे स्त्रियों को मिले दण्ड के रूप में देखना भी एक सामान्य प्रवृत्ति है।

स्त्री रज से घृणा की अपमानजनक और पूर्वाग्रहग्रस्त प्रवृत्ति को नारीवादी विद्वानों ने स्त्री से जुड़ी हर एक बात से घृणा करने के रूप में देखा है। दूसरी ओर वीर्य का गुणगान पुरुष से जुड़ी हर चीज़ को श्रेष्ठ मान लेने की ज़िद से उपजा है। *मिस मैगज़ीन* में अक्टूबर 1978 में ग्लोरिया स्टीनम का एक लेख छपा 'अगर पुरुष रजस्वला हो सकते', हालाँकि यह लेख बार-बार उद्धृत किया जाता है, लेकिन गीता प्रेस के प्रसंग में इसे उद्धृत किये बिना बात पूरी नहीं होगी। स्टीनम के इस व्यंग्य लेख के कुछ हिस्से हैं :

> क्या होगा मान लें अगर अचानक जादू से पुरुष रजस्वला होने लगें और महिलाएँ न हो सकें? जवाब साफ़ है— मासिक धर्म एक स्पृहणीय, गौरवमय, मर्दाना कार्यक्रम में तब्दील हो जाएगा : पुरुष इसकी मात्रा और अवधि के विषय में डींग मारेंगे। पुरुषत्व के इस इच्छित प्रमाण— माहवारी की शुरुआत की— लड़के धार्मिक कर्मकाण्डों और स्टैग पार्टियों के ज़रिये निशानदेही करेंगे। संसद मासिक असुविधाओं को ख़त्म करने में सहायता के लिए नैशनल इंस्टिट्यूट ऑफ़ डिसमैनरिया की स्थापना करेगी। सैनिटरी-आपूर्ति संघ-वित्त-पोषित और मुफ़्त होगी (बेशक तब भी कुछ पुरुष जॉन वेन टेमपून, मुहम्मद अली रोप-अ-डोप पैड, जो नामथ जौक शील्ड जैसे प्रतिष्ठित कमर्शियल ब्रांडों पर ख़र्च करेंगे - उन आरामदेह कुँवारे दिनों के लिए!
>
> सैनिक, दक्षिणपंथी राजनेता और धार्मिक रूढ़िवादी मेंस्ट्रुएशन का उल्लेख 'केवल पुरुष ही सेना में काम कर सकते हैं' इसके प्रमाण के रूप में करेंगे (रक्त बहाने के लिए रक्त देना पड़ता है), राजनीतिक कार्यालयों पर क़ब्ज़ा कर लेंगे (क्या मंगल ग्रह द्वारा संचालित इस निरंतर चक्र के बिना औरत आक्रामक हो सकती है?), पुजारी और मंत्री बनेंगे [क्या औरत हमारे पापों के

---

[74] *भारतेंदु हरिश्चंद्र ग्रंथावली,* भाग 6 : 96.

[75] *प्रताप नारायण मिश्र ग्रंथावली* : 81.

(प्रायश्चित) लिए रक्त दे सकती है ?], या धर्मगुरु (अशुद्धताओं के मासिक विनाश के अभाव में औरत अशुद्ध बनी रहती है) ... पुरुष महिलाओं को सहमत कर लेंगे कि महीने के उन दिनों में सम्भोग अधिक आनंददायक होता है। ... बेशक नर बुद्धिजीवी सबसे अधिक तार्किक और नैतिक दलील पेश कर सकेंगे। उदाहरण के लिए किस तरह कोई महिला किसी भी ऐसे विषय में पारंगत हो सकेगी जिसमें कालबोध, अवधि, गणित या परिमाण की ज़रूरत है, बिना चंद्रमा और ग्रहों का चक्र मापने के इस नैसर्गिक गुण के— और कुछ भी वह कैसे माप सकेगी? दर्शन और धर्म के विशिष्ट क्षेत्रों में क्या औरत ब्रह्माण्ड की लय से अपनी अनभिज्ञता की क्षतिपूर्ति कर सकेगी? या हर महीने प्रतीकात्मक मृत्यु-और-पुनर्जीवन के अभाव की? असल में अगर पुरुष रजस्वला हो सकते तो शक्ति का औचित्य प्रतिपादन हमेशा इसी तरह चलता रहता।[76]

माहवारी के दौरान होने वाला रक्तस्राव कोई सड़ा हुआ रक्त नहीं है, जैसा कि गीता प्रेस के लेखक कहा करते हैं। विज्ञान की सामान्य जानकारी रखने वाला कोई भी व्यक्ति इस बात को जानता है, बावजूद इसके स्त्री रज को लेकर घृणा बनी हुई है। कहना न होगा धर्म से संचालित जन मानस में धर्मग्रंथों के रास्ते पहुँचाई गयी घृणा ही इसका कारण है। यह घृणा केवल सिद्धांत में ही रहती तो बात दूसरी थी। इसने व्यवहार में जिस आचरण संहिता को लागू कराया है वह वास्तव में मासिक चक्र के दिनों को 'दण्ड' में परिवर्तित कर देती है। 'हिंदुत्व' की गीता प्रेसनुमा अवधारणा से संचालित परम्परागत परिवारों में हर महीने दुहराई जाने वाली यह आचरण संहिता न सिर्फ़ मानसिक रूप से यंत्रणादायक होती है बल्कि स्त्री के भीतर बहुत छोटी उम्र से ही ख़ुद को हीन और अशुद्ध समझने की प्रवृति को जन्म देती है। निवेदिता मेनन लिखती हैं कि हमारा समाज सोच-समझकर माहवारी को कठिन बनाता है जिससे स्त्री का बाहर निकलना और सामान्य तरीक़े से काम करना असम्भव हो जाता है। समाज चाहे तो कुछ छोटी-मोटी सार्वजनिक सुविधाएँ देकर सार्वजनिक स्थलों को रजस्वला स्त्रियों के लिए अधिक मित्रतापूर्ण बना सकता है, लेकिन ऐसा किया नहीं जाता।[77] निश्चित तौर पर मासिक चक्र की इस शारीरिक प्रक्रिया का इस्तेमाल प्रारम्भ से ही पितृसत्ता ने स्त्रियों पर नियंत्रण के लिए किया है और गीता प्रेस की ब्राह्मणवादी पितृसत्ता आज भी इसका इस्तेमाल स्त्री के लिए घर के भीतर ही एक यंत्रणा शिविर बना देने के लिए कर रही है। रजस्वला स्त्री के लिए गीता प्रेस की किताबों में सुझाई गयी आचरण संहिता के कुछ नमूने द्रष्टव्य हैं :

'रजस्वला को सबसे अलग, किसी की नज़र न पड़े ऐसे स्थान में बैठना चाहिए... किसी को न अपना मुख दिखलाना चाहिए, न अपना शब्द सुनाना चाहिए।'[78] 'तीन दिनों तक केवल एक बार भोजन करना चाहिए, ज़मीन पर सोना संयत रहना, घी दूध का सेवन नहीं करना चाहिए'।[79]

मासिक चक्र के दौरान स्त्री एक भिन्न शारीरिक तथा मानसिक अवस्था से गुज़रती है। रक्ताल्पता की ओर बढ़ रही और हॉर्मोनल उतार-चढ़ाव को झेल रही स्त्री जिसमें उसकी पोषण के साथ ही भावनात्मक निर्भरता भी और दिनों से अधिक बढ़ जाती है यह समझने के लिए किसी को विज्ञान का छात्र होने की ज़रूरत नहीं है। ऐसे में उसे ज़मीन पर सोने, दिन में एक बार खाने और किसी को अपना मुख न दिखलाने की सलाह देना हिंदुत्व के सिद्धांतकारों ने क्यों चुना? हनुमान प्रसाद पोद्दार लिखते हैं, 'रजस्वला होने के समय जितना इंद्रिय-संयम, हल्का भोजन और विलासिता का अभाव होगा उतनी ही स्त्री शोणित की शक्ति कम होगी, जिससे ऋतु स्नान के बाद गर्भाधान होने पर कन्या न होकर पुत्र उत्पन्न होगा।'[80]

---

[76] ग्लोरिया स्टीनम (1978).
[77] निवेदिता मेनन (2012).
[78] हनुमान प्रसाद पोद्दार (2012) : 29.
[79] वही : 30.
[80] वही.
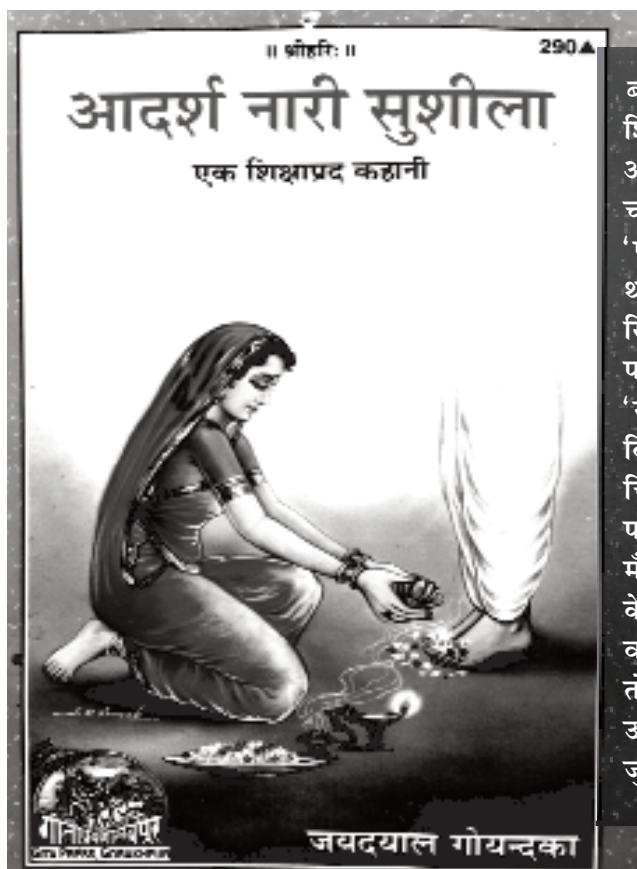
*बालाबोधिनी, आर्यमहिला* जैसी 'स्त्री शिक्षा' को समर्पित पत्रिकाओं में सीता, अरुंधती, अनसूया जैसी पतिव्रताओं के चरित्र, व्रतकथाएँ तथा 'शिशुपालन' या 'पतिसेवा' की विधियाँ बताते रहना ज़रूरी था और यह ध्यान रखना भी कि कहीं स्त्रियाँ *सरस्वती* या *माधुरी* जैसी साहित्यिक पत्रिकाएँ न पढ़ने लगें जिनमें प्रायः ही 'सुरुचिपूर्ण' तथा 'सहृदय' पाठकों के विनोदार्थ स्त्रियों के 'कलात्मक' अर्धनग्न चित्र छापे जाते थे। इस पर भी कहीं परिवार के पुरुष सदस्यों के पढ़ने हेतु मँगाई गयी ऐसी पत्रिकाएँ घर की स्त्रियों के हाथ लग ही जाएँ और उनकी पूर्व वर्णित नौ गुना कामुकता जाग्रत हो जाए तो उसके शमन के लिए 'गीता प्रेस' द्वारा उपलब्ध कराई गयी यौन संबंधों की जुगुप्साजनक व्याख्याएँ मौजूद ही हैं।

'स्त्री शोणित की शक्ति' कम करने की यह चिंता दरअसल एक प्रतीक भर है। पोद्दारजी भी जानते थे कि इसका कन्या या पुत्र होने से कोई लेना-देना नहीं। तो क्या यह प्रतीक वास्तव में मासिक चक्र से उपजी औरत की शारीरिक कमज़ोरी के दौरान ही उस पर नियंत्रण कर लेने के पितृसत्ता के उस तरीक़े को दर्शाता है जिसे धर्मों के ज़रिये लागू कराया गया था? 'स्त्री पैदा नहीं होती बना दी जाती है' का इशारा क्या इसी ओर नहीं है? सोच समझकर पीढ़ी-दर-पीढ़ी एक लैंगिक समुदाय को कमज़ोर करने और उस पर शासन करने का यह तरीक़ा पितृसत्ता को धर्म के सहयोग के बिना सम्भवत: इतना सफल न होता। रज की शक्ति क्षीण और वीर्य की शक्ति पुष्ट करने की यह चिंता दरअसल स्त्री को स्त्री और पुरुष को पुरुष बनाए रखने की चिंता है। स्त्रियों का स्वस्थ रहना भी इन्हें पुरुषोचित गुण जान पड़ता है, 'वर्तमान शिक्षा का एक बड़ा दोष यह है कि स्त्रियों में नारीत्व और मातृत्व का नाश होकर उनमें पुरुषत्व बढ़ रहा है ... नारी नियमित व्यायाम करके और भाँति-भाँति के अन्यान्य साधनों के द्वारा 'मर्दाना' बनती जा रही है, तो पुरुष अंग लालित्य, भाव-भंगिमा, केश-विन्यास और स्वर-माधुर्य आदि के द्वारा 'ज़नाना' बनने जा रहे हैं।'[81]

---

[81] वही : 24.

ज़ाहिर है पुरुषत्व और स्त्रीत्व का यह भेद उतना भी 'विज्ञान सिद्ध सत्य' नहीं है जितना हिंदी नवजागरण तथा गीता प्रेस की किताबों में इस पर ज़ोर दिया गया है। यह प्राकृतिक नहीं एक सामाजिक निर्मिति है और 'जेंडर परफ़ॉरमेटिविटी' की इस प्रक्रिया को हमें पूरी ज़िंदगी दोहराते रहना होता है।[82] बालकृष्ण भट्ट तथा भारतेंदु हरिश्चंद्र से लेकर हनुमान प्रसाद पोद्दार तक जारी वीर्य को पुष्ट करने की यह चिंता इसी से संबंधित है। हिंदू जाति की उनकी अवधारणा इस हद तक वीर्य केंद्रित है कि ऐसा मालूम होता है वीर्य रक्षा पर ही हिंदू जाति का सारा दारोमदार टिका हुआ है और स्त्री रज के कारण एक दिन हिंदू जाति पतन के गर्त में चली जाएगी, 'लड़कों को छोटेपन में ही ब्याह कर बल, वीर्य, आयुष्य सब मत घटाइए। ... वीर्य को उनके शरीर में पुष्ट होने दीजिए।'[83] 'भोग की संख्या जितनी कम होगी उतनी ही शुक्र की निरोगता, पवित्रता और शक्तिमत्ता बढ़ेगी। भोग-सुख भी उसी में अधिक प्राप्त होगा और संतान भी स्वस्थ, पुष्ट ... होगी।'[84]

यह बातें आम लोगों के सोचने के तरीक़े में शामिल हो चुकी है। आनंद पटवर्धन की डॉक्युमेंट्री पिता, पुत्र और धर्मयुद्ध में सामान्य लोगों में से कोई बताता है, 'नामर्दगी से लड़कियाँ पैदा होती हैं।' लेकिन सच तो यह है कि जिस पुष्ट हिंदू संतति की कल्पना हिंदुत्व की यह विचारधारा वीर्य के ज़रिये कर रही है उस संतति के स्वास्थ्य में वीर्य की कोई भूमिका नहीं है (कुछ आनुवंशिक रोगों को छोड़कर)। इसके उलट माहवारी में सता-सता कर कुपोषित कर दी गयी स्त्री के शरीर पर ही गर्भस्थ शिशु जीता है। क्या यह बात गीता प्रेस के लेखक नहीं जानते?

**'इनकी तो उत्पत्ति ही ईश्वर ने ऐसी बनाई है।'**

मार्च, 1875 की *हरिश्चंद्र चंद्रिका* में भारतेंदु ने 'भ्रूणहत्या निवारण के हेतु आर्य गण से निवेदन' नाम का एक लेख लिखा। यह लेख बनारस में बूला नाले से एक लड़की के नल में से निकलने से व्यथित होकर लिखा था। इस लेख में उन्होंने 'मैमथ की नस्ल' के समान 'छीजते' जा रहे हिंदुओं की संख्या को भ्रूण हत्या के द्वारा और कम न करने का निवेदन किया है। लेख में अक्षत योनि की विधवा तथा कामुक स्त्रियों के पुनर्विवाह के लिए लोगों को सहमत करने के प्रयास में जिन तर्कों का इस्तेमाल किया गया है वे स्त्री विरोधी तर्क हैं। लेख में तरह-तरह से यह सिद्ध करने की कोशिश है कि स्त्रियाँ स्वभाव से ही दुष्ट होती हैं तथा इनका समस्त व्यवहार काम-भावना से ही संचालित होता है। अत: भारतेंदु आर्य भाइयों से इन 'कामुक' स्त्रियों को क्षमा करने की प्रार्थना करते हुए लेख समाप्त करते हैं क्योंकि 'इनकी तो उत्पत्ति ही ईश्वर ने ऐसी बनाई है'।[85]

औपनिवेशिक भारत संबंधी अध्ययनों में हिंदू स्त्री की यौनिकता और पितृसत्ता की आपसी खींचतान को रेखांकित किया गया है। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में हिंदू स्त्री की यौनिकता नये सिरे से नियंत्रित एवं पुनर्परिभाषित की जाने लगी थी। हिंदी नवजागरण का साहित्य भी इससे अछूता नहीं था। चारु गुप्ता ने अपने महत्त्वपूर्ण शोध में दिखलाया है कि किस तरह हिंदी के लेखकों के लिए हिंदू स्त्री की 'अनियंत्रित यौन भावना' एक गम्भीर चुनौती थी जिसे कुंद करने और क़ाबू में करने की चिंता उस दौर के लेखन तथा पत्रकारिता सभी में देखी जा सकती है। गीता प्रेस की स्त्री संबंधी किताबें भी स्त्री की यौनिकता से आक्रांत नज़र आती हैं। जहाँ हिंदी नवजागरण के लेखक स्त्रियों में पुरुषों की अपेक्षा आठ गुना काम को लेकर चिंतित थे,[86] वहीं गीता प्रेस स्त्रियों में नौ गुणा अधिक काम

[82] निवेदिता मेनन (2012), वही.
[83] *भारतेंदु हरिश्चंद्र ग्रंथावली,* भाग 6 : 70.
[84] हनुमान प्रसाद पोद्दार (2012) : 36.
[85] *भारतेंदु हरिश्चंद्र ग्रंथावली,* भाग 6 : 95.
[86] वही.

देखता है। हनुमान प्रसाद पोद्दार के अनुसार, 'कन्या का विवाह रजोदर्शन से पूर्व हो जाना चाहिए ... रजोदर्शन प्रकृति का एक महान् संकेत है ... रजस्वला होने पर स्त्री को पुरुष प्राप्ति की इच्छा होती है ... उस समय यदि पति के द्वारा अंतर्करण सुरक्षित नहीं होता तो उसके चित्त पर अनेको पुरुषों की छाया पड़ती है, जिससे आदर्श सतीत्व नष्ट हो जाता है ... स्वामी के आश्रय से स्त्री की काम वासना इधर-उधर फैल कर दूषित नहीं हो पाती ... यह तभी सम्भव है, जब ऋतुकाल के पूर्व विवाह हो चुका हो और वह ऋतुकाल में पति के संरक्षण में रहे'।[87]

आज के समय जब अमूमन माहवारी दस या साढ़े दस साल की उम्र में शुरू हो जाती है तब गीता प्रेस की माने तो लड़की की शादी नौ वर्ष में कर देनी होगी! जिससे दस-ग्यारह वर्ष की उम्र में रक्तस्राव शुरू होते ही उसका पति उससे यौन संबंध स्थापित कर सके क्योंकि गीता प्रेस के अनुसार स्त्री को रजस्वला होते ही गर्भाधान कर लेना चाहिए। इनका मानना है, 'रजोदर्शन के बाद स्त्रियों को बहुत काल तक काम के और मातृत्व के अंगों का व्यवहार न करने देना उन पर अत्याचार करना होता है और इसी से देखा जाता है कि उस समय अविवाहित कन्याओं के हिस्टीरिया, रज संबंधी बहुत सी व्याधियाँ, अजीर्ण, सिर दर्द, सिर घूमना आदि भाँति-भाँति के रोग और बहुत बार अत्यंत दूषित रक्तहीनता और हितपिण्ड की बीमारी हो जाती है। इस बात को सभी विशेषज्ञ विद्वान स्वीकार करते हैं। इसीलिए हमारे यहाँ रजोदर्शन के आरम्भ से ही कामोपभोग और मातृत्व के अंगों का व्यवहार हो सके और ऐसा होने में किसी विपत्ति का सामना न करना पड़े— कम उम्र में कन्याओं के विवाह की प्रथा है।'[88]

इसे 'हिंदुत्व' के इन सिद्धांतकारों का मानसिक दिवालियापन या गीता प्रेस के लेखकों की बीमार मानसिकता कह कर टाला नहीं जा सकता। दरअसल यह हिंदुत्व के स्त्री के प्रति नज़रिये को अधिक सपाट ढंग से सामने रखता है। इस कल्पित महान हिंदू राष्ट्र' में स्त्री को उसकी यौन एवं प्रजनन संबंधी भूमिका तक सीमित कर देने की यह कल्पना चिंताजनक है। इस 'यूटोपियन राष्ट्र' में जहाँ एक ओर स्त्री की यौन इच्छाओं को नियंत्रित एवं तिरस्कृत करने की कोशिश है वहीं दूसरी ओर स्त्री पुरुष समुदाय की यौन इच्छा की पूर्ति का माध्यम भर है। *कल्याण* के नारी अंक में उत्तर प्रदेश के दूसरे मुख्यमंत्री रहे बाबू सम्पूर्णानंद लिखते हैं, 'स्त्री पुरुष की कामवासना की तृप्ति का साधन है। पुरुष उसको ढूँढ़ता है। उसको प्राप्त करने से जो सुख मिलता है, उसका आरोप उसके शरीर में करता है। स्त्री उसके प्रतीक्षित सुख की मूर्ति है। ... स्त्री के लिए एक पुरुष निष्ठा सहज और स्वाभाविक है, पुरुष प्रकृत्या बहुस्त्रीगामी होता है। उसके लिए एकपत्नीव्रत होना कष्टसाध्य होता है।'[89]

वास्तव में 'काम' से स्त्री का जन्म मानने वाले धर्म में स्त्री का अस्तित्व अगर पुरुष की 'कामवासना की तृप्ति का साधन' होकर रह जाए, तो इसमें आश्चर्य क्या है। ध्यान देने की बात है कि सम्पूर्णानंद हिंदू राष्ट्रवादी न हो कर समाजवादी ख़ित्ते के नेता-बुद्धिजीवी थे। हिंदी नवजागरण तथा गीता प्रेस दोनों का प्रतिनिधित्व करने वाले उनका यह उद्धरण बताता है कि पितृसत्तात्मक नज़रिये के मामले में कोई किसी से कम नहीं था। स्त्री की यौनिकता का भय तो है, लेकिन साथ ही स्त्री की यौनिकता को सिरे से नकारने की कोशिश भी। यहाँ स्त्री की निष्क्रिय यौनिकता को 'स्वाभाविक' बताते हुए पुरुष के प्रकृत्या बहुस्त्रीगामी होने पर ज़ोर दिया गया है। चारु गुप्ता के अनुसार अपनी मर्दानगी साबित करने को बेचैन 'हिंदू राष्ट्र' के विचारकों के समक्ष स्त्री की बेक़ाबू और असंतुष्ट यौन इच्छा भयोत्पादक थी।[90] सम्भवत: यही वजह है कि गीता प्रेस का साहित्य स्त्री की यौन आकांक्षाओं को बेतरह तिरस्कृत और अपमानित करता नज़र आता है। गीता प्रेस की स्त्री शिक्षा संबंधी

---

[87] हनुमान प्रसाद पोद्दार (2012) : 27-28.

[88] श्री चारुचंद्रजी मित्र, एटर्नी-एट-ला, 'नारी पाश्चात्य समाज में और हिंदू समाज में', *कल्याण,* नारी अंक : 144-145.

[89] बाबू सम्पूर्णानंदजी, शिक्षासचिव, युक्तप्रांत, 'नारी में परा शक्ति', *कल्याण,* नारी अंक : 49-50.

[90] चारु गुप्ता (2005) : 67.

किताबों में कुछ नायिकाएँ रोल मॉडल के रूप में पेश की गयी हैं। ऐसी ही एक नायिका सती सुकला है। उसके मुँह से यौन संबंधों की यह व्याख्या सुनिए :

> प्राणियों के कपाल में छह कीड़े विद्यमान हैं। दो कानों की जड़, नाक के अग्र भाग और नेत्रों में इसका निवास स्थान है। इनका आकार छोटी अँगुली के समान है। इनका रंग नवनीत (मक्खन) के समान है। इनमें से कुछ की पूँछ लाल और कुछ की काली है। कान की जड़ में जो कीड़े हैं उनके नाम पिंगली और शृंखली है। नाक के अगले भाग में स्थित कीड़ों के नाम चपल और पिप्पल हैं। आँखों के मध्य स्थित कीड़ों के नाम शृंगली और जंगली है। प्राणीदेह में इस प्रकार 150 कीड़े विद्यमान हैं। ललाट के अंदर कुछ कीड़े हैं, जो सरसों के दानों के समान हैं। ये देहधारियों में कपालरोग पैदा करते हैं। इनके अतिरिक्त दूसरे संतानोत्पत्ति वाले महाकीटाणु भी हैं। उनकी बात भी तुमसे कहती हूँ। उन कीड़ों का आकार चावल के समान है, रंग भी चावल के समान है। उन कीड़ों के मुख में यदि दो रोएँ हों तो वैसे कीड़ेवाले मनुष्य तुरंत नष्ट हो जाते हैं। अपने उपयुक्त स्थान में स्थित प्रजापत्य (प्रजा अथवा संतान उत्पन्न करने वाले) कीड़ों के मुँह में रस रूप में वीर्यपात होता है। प्रजापात्य मुँह द्वारा उस वीर्य का पान करके उन्मत्त हो उठता है। तालु के भीतर वह वीर्य चंचल हो जाता है। इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना नामक तीन नाड़ियाँ हैं। उस नाड़ी-जाल के पंजर में वीर्य के कारण सब प्राणियों में काम की खुजली उत्पन्न होती है। उससे पुरुष और स्त्री को उत्तेजना होती है। उस समय स्त्री पुरुष प्रमत्त होकर संग करते हैं। उससे क्षणमात्र के लिए सुख होता है। फिर कुछ समय के बाद वही खुजली उत्पन्न हो जाती है।[91]

स्त्री को यौन संबंधों की निस्सारता समझाने के लिए लिखा गया यह सुरुचिपूर्ण वर्णन ही जैसे काफ़ी नहीं था, सो स्त्रियों की यौन इच्छाओं का तिरस्कार करने के लिए गीता प्रेस कुछ धमकियों का भी सहारा लेता है, 'ऋतुकाल में स्त्री की कामवासना बलवती हुआ करती है और वह पुरुष संबंध की इच्छा करती है।' इसलिए 'ऋतुकाल के समय पुरुषों को भूलकर भी रजस्वला के समीप नहीं जाना चाहिए।'[92] यौन संसर्ग की इच्छुक स्त्री के पास जाने का परिणाम इतना भयावह दिखलाया गया है कि गीता प्रेस का कोई भी पाठक ऐसा करने से डरे, 'जो पुरुष रजस्वला नारी के साथ समागम करता है, उसकी बुद्धि, तेज़, बल, नेत्र और आयु नष्ट होती है।'[93]

एक ओर कामातुर स्त्री के समीप न जाने की हिदायत है वहीं दूसरी ओर चार छह पन्नों की वह सूची कब-कब पत्नी के साथ संसर्ग नहीं करना है। गीता प्रेस में वह मुहूर्त भी सुझाया गया है जब पंचांग में राशियाँ, नक्षत्र, लग्न, सूर्य, चंद्र, ग्रह-दशा सब कुछ विचार कर पुरुष अपनी पत्नी के साथ सम्भोग कर सकते हैं।[94] हालाँकि पुरुषों के लिए वेश्यागमन की कोई मनाही नहीं है, यहाँ केवल स्त्री की यौनिकता का तिरस्कार किया गया है। गीता प्रेस और हिंदी नवजागरण दोनों जगह पुरुषों के लिए यौन संबंध के बाहरी विकल्प खुले हुए हैं, 'हमारी स्त्रियाँ परकटा पखेरू की भाँति ... सतीत्व पालन करते बैठी रहती हैं बाहर बाबू साहब नयी-नयी कलियों का स्वाद लेते डोलते हैं'।[95]

गीता प्रेस में भी वेश्यागामी पतियों की सेवा में 'पातिव्रत्य' का पालन करते हुए जान दे देने वाली 'पतिव्रता स्त्रियों' की 'प्रेरक' कहानियाँ सुनाई गयी हैं। इतिहासकारों ने वीर्य रक्षा को राष्ट्र की रक्षा से जोड़ कर देखा है। यह निष्कर्ष हिंदी नवजागरण के साथ ही गीता प्रेस के साहित्य पर भी लागू होता है। जहाँ ब्रह्मचर्य को वीर्य मज़बूत करने के साधन के रूप में पेश किया गया है जिससे राष्ट्र (हिंदू जाति) तो बचेगा ही 'भोग सुख में भी वृद्धि होगी। किंतु यह भोग सुख वीर्यवान पुरुष संतति के लिए है। स्त्री का इसमें कोई हिस्सा नहीं है। वह इस समस्त आयोजन में महज़ एक यौन उत्पाद है।

---

[91] *सती सुकला* : 36-37.

[92] हनुमान प्रसाद पोद्दार (2012) : 27, 29.

[93] वही.

[94] हनुमान प्रसाद पोद्दार (2012) : 35-36.

[95] बालकृष्ण भट्ट (2009) : 135.

## नियंत्रित आठों पहर : कामुक हिंदू स्त्री, वर्णसंकर तथा हिंदू जाति का सम्भावित पतन

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में बहुत से विद्वानों ने रक्त की 'शुद्धता' ख़त्म होने को आर्यों के पतन का कारण माना था। हिंदू जाति की रक्षा 'शुद्ध रजवीर्य' (सजातीय विवाह) से उत्पन्न संतानों से ही मानी गयी। हिंदी नवजागरण तथा गीता प्रेस के स्त्री संबंधी साहित्य की चिंताएँ भी कामुक हिंदू स्त्री तथा अवांछित 'वर्णसंकर' संतति के इर्द-गिर्द ही घूमती है। भारतेंदु ने हालाँकि कुछ उदारता दिखाते हुए इन वर्णसंकर बच्चों का जीवन बख़्श देने की गुज़ारिश की थी लेकिन बालकृष्ण भट्ट जैसे लेखक अपना क्रोध छिपा नहीं सके। अपने एक लेख में हिंदू जाति के पतन का कारण 'कुलंकषा' स्त्रियों को मानते हुए जिनके 'होते हुए कुल का अभिमान नितांत ओछापन' है।[96] वे लिखते हैं, 'सच है कुल की रक्षा सर्वथा स्त्रियों के अधीन है'।[97] और क्योंकि इन स्त्रियों ने कुल की रक्षा नहीं की 'परिणाम यह हुआ कि कोई बिरादरी अब शुद्ध नहीं रह गयी।'[98] स्पष्ट है मिश्रित या अंतर्जातीय संबंध से पैदा संतानें ही हिंदू जाति के 'विनाश' की उत्तरदायी थीं क्योंकि बालकृष्ण भट्ट के अनुसार, 'शुद्ध रजवीर्य की औलाद विपत्ति की कसौटी से कसने पर कभी नहीं डगमगाएगी।'[99]

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में उभरी इस प्रवृत्ति के दूसरे पक्षों पर उमा चक्रवर्ती ने विचार किया है। वे लिखती हैं :

> निम्न जातियाँ जो भी मिथक अथवा आख्यान गढ़ रही थीं वे उनकी उत्पत्ति के ब्राह्मणवादी सिद्धांत 'वर्णसंकर' का ही विस्तार लेकिन उस पर पलटवार थे। कुमारन गुरुदेवन द्वारा केरल के दलित जातियों अथवा आदि द्रविड़ों की उत्पत्ति का गढ़ा गया आख्यान इसी तरह के आख्यानों का एक रोचक उदाहरण है। इसमें इन जातियों को मूल बाशिंदे होने के अलावा 'द्राविड़' कहा गया जिन्हें 'आर्यों' ने अपने अधीन कर लिया। अधीनता का जो कारण बताया गया है वह स्त्री विरोधी है। इस कहानी के मुताबिक़ आदि द्राविड़ स्त्रियाँ आर्यों द्वारा फुसला ली गयीं और अपने पुरुषों के समक्ष शुचिता की शपथ लेने से प्राप्त ऊँचाई से गिर गयीं। इस तरह 'शुद्धता' या 'पवित्रता की विरासत खोकर वे आर्यों के अधीन होकर रह गये। यह निम्न जाति की उत्पत्ति के ब्राह्मणवादी आख्यान की प्रतिक्रिया में किया गया पलटवार है।[100]

हालाँकि सावरकर— जो अपनी विचारधारा के पीछे खुद को हिंदू कहने वाले लोगों की एक बड़ी संख्या को संगठित करना चाहते थे— ने एक अलग रणनीति अपनाते हुए माना था कि विजेता आर्यों ने आक्रमण करके यहाँ के मूल निवासियों को ग़ुलाम बनाया और 'नीची' जातियों में रखा, लेकिन इन शताब्दियों में क्योंकि हिंदू रक्त मिश्रित हो चुका है इससे वे एक हैं।[101] सावरकर की इस रणनीति का ब्राह्मणवादी हिंदू संस्थाओं पर कितना असर पड़ा इसे हम गीता प्रेस के उदाहरण से समझ सकते हैं। 'सुखमय विवाह के साधन' में लिखा गया है, 'असवर्ण विवाह न करे। परधर्म में विवाह न करे। विजातीय विवाह न करे।'[102]

हम देखते हैं कि गीता प्रेस की किताबें सजातीय विवाह का निर्देश देकर ही नहीं रुक जाती। स्त्री की यौनिकता तथा अंतरंग संबंधों को लेकर यहाँ जिस तरह की कल्पनाएँ की गयी हैं तथा जिन प्रतीकों के ज़रिये 'वर्णसंकर' संतति के संबंध में उनका भय जो अभिव्यक्ति पाता है वह जुगुप्साजनक है। हनुमानप्रसाद पोद्दार ने नीचे दिये गये उद्धरण में जिस 'विज्ञानसिद्ध' सत्य को बतलाया है उसके अनुसार स्त्री इतनी अधिक कामुक है कि उसे उत्तेजित अवस्था में (माहवारी ख़त्म होने के बाद')

---

[96] बालकृष्ण भट्ट (2009) : 140.
[97] वही.
[98] वही.
[99] वही.
[100] उमा चक्रवर्ती (2011) : 111–112.
[101] तनिका सरकार तथा अन्य (2012) : 276.
[102] हनुमान प्रसाद पोद्दार (2013) : 14.

अगर पति नहीं मिला और उसने कुत्ते, भेड़िये, बकरे को भी देख लिया तो वह उन्हीं से मैथुन की कल्पना करने लगती है। ऐसे में स्त्री अपनी 'कामुकता' के कारण पशुओं के सामने भी जाने लायक़ नहीं है। अगर उसे रोका नहीं गया तो 'साँप, बिच्छू, भेड़िया आदि के आकार के विकृत जीव ऐसे गर्भ से उत्पन्न होते हैं'।[103] दरअसल यह प्रतीक सांकेतिक रूप से 'वर्णसंकर जातियों' के लिए इस्तेमाल किया जा रहा है।

> हमारे शास्त्रों में कहा गया है और यह विज्ञानसिद्ध है कि ऋतुस्नान के पश्चात् स्त्री पहले पहल जिसको देखती है, उसी का संस्कार उसके चित्त पर जाता है और वैसी ही संतान बनती है। एक अमेरिकन स्त्री के कमरे में एक हब्शी की तस्वीर टँगी थी। उसने ऋतुस्नान के बाद पहले उसी को देखा था और गर्भकाल में भी प्रतिदिन उसी को देखा करती थी। उसका गर्भस्थ बालक पर इतना प्रभाव पड़ा कि उस बालक का चेहरा ठीक हब्शी का-सा हो गया। एक ब्राह्मण-स्त्री ने ऋतुस्नान के बाद एक दुष्ट प्रकृति के पठान को अचानक देख लिया था, इससे उसका वह बालक ब्राह्मणों के आचरण से हीन पठान-प्रकृति का हुआ। सुश्रुत-शरीरस्थान के द्वितीय अध्याय में लिखा है कि ऋतुस्नान करने के बाद स्त्री को पति न मिलने पर वह कभी-कभी कामवश स्वप्न में पुरुष समागम करती है। उस समय अपना ही वीर्य रज से मिलकर जरायु में पहुँच जाता है और वह गर्भवती हो जाती है। परंतु उस गर्भ में पति-वीर्य के अभाव में अस्थि आदि नहीं होते, वह केवल मांस पिण्ड का कुम्हड़ा-जैसा होता है या साँप, बिच्छू, भेड़िया आदि के आकार के विकृत जीव ऐसे गर्भ से उत्पन्न होते हैं। ऋतुकाल में कुत्ते, भेड़िये, बकरे, आदि के मैथुन देखने पर भी उसी भाव के अनुसार रात को स्वप्न आते हैं और ऐसे विकृत जीव गर्भ में निर्माण हो जाते हैं।[104]

स्त्री-जीवन के सचेतन आठों पहर पर नियंत्रण ही गीता प्रेस के हिंदुत्व के लिए काफ़ी नहीं, वे उसके स्वप्न और अवचेतन पर भी नियंत्रण करना चाहते हैं कि कहीं वह 'कामवश स्वप्न में पुरुष समागम' न कर ले। 'हब्शी' या 'पठान' को सामने से देखने की भी अनुमति नहीं है कि कहीं हिंदू स्त्री अचेतन में इनकी कल्पनाएँ न करने लगे। हमें याद रखना चाहिए कि गीता प्रेस की ये किताबें हिंदुत्व के एक समूचे जीवन-दर्शन के संदर्भ में है। ऐसे में इन किताबों में सम्बोधित स्त्री गीता प्रेस के विश्वास में आधुनिक शिक्षा से दूर और मूर्ख हिंदू स्त्री है जिसके मस्तिष्क में गीता प्रेस की किताबें पढ़ते रहने से अविश्वसनीय अंधविश्वासों का कूड़ा-कचरा पहले से जमा है। विज्ञान के सामान्य बोध से रहित इस सम्बोधित स्त्री को ही यह समझाना सम्भव होगा कि हब्शी, पठान, कुत्ता, भेड़िया, बकरा, साँप, बिच्छू वग़ैरह (मनुष्यों को रंग और धर्म के आधार पर जानवरों के समतुल्य रखना भी गीता प्रेस की विचारधारा का हिस्सा है) के बारे में अगर उसने स्वप्न में भी कल्पना की तो 'उस समय अपना ही वीर्य रज से मिलकर जरायु में पहुँच जाता है और वह गर्भवती हो जाती है'। यहाँ 'विकृत जीव' (वर्णसंकर संतान) और स्त्री की अनियंत्रित कामुकता के प्रति ब्राह्मणवादी भय कैसी जुगुप्साजनक फ़ैंटेसी की शक्ल अख़्तियार कर लेता है देखने योग्य है!

गीता प्रेस के साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता उस सामान्य संकोच का अभाव है जो स्वतंत्र भारत में बड़े से बड़े जातिवादी तथा नारीद्वेषी में भी पाया जाता है। ख़ुद को धार्मिक सत्ता समझने का दम्भ ही सम्भवत: इन्हें वह आत्मविश्वास देता है, जिससे यह लेखक, मुस्लिम तथा दलित जाति के पुरुषों के लिए कुत्ते, भेड़िये, बकरे के प्रतीक का इस्तेमाल कर पाते हैं और पूर्णत: निर्भय होकर स्त्रियों का इन किताबों के ज़रिये मानसिक उत्पीड़न करते हैं। जातिवाद को ये किताबें पूर्व बनाम पश्चिम की बहस के रूप में प्रस्तुत करती हैं, जहाँ इन समस्त जातिवादी तर्कों का भारतीयता के नाम पर बचाव किया जा सके। 'सुधार के नाम पर संहार' नाम के लेख में स्त्रियों को हिदायत दी गयी है,

---

[103] हनुमान प्रसाद पोद्दार (2012) : 37.

[104] वही.

'जिन्हें भारत को पश्चिम के आदर्श पर चलाना है, उनकी दृष्टि में वर्णाश्रम धर्म भले ही बंधन हो, आर्य संस्कृति का तो यही प्राण है। ... यदि हम लोग भी अन्य प्राचीन धर्मों की तरह सबसे रोटी-बेटी का व्यवहार करने में स्वतंत्र होते तो उन्हीं की तरह आज तक अस्त हो चुके होते।'[105]

ख़ुद को पराजित महसूस कर रहे 'हिंदू जाति' के सिद्धांतकार अपनी कथित पराजय का ज़िम्मेदार स्त्रियों को ठहराकर निवृत्त भी हो जाना चाहते हैं और 'वर्णसंकर' की रोकथाम के बहाने स्त्रियों पर पितृसत्तात्मक नियंत्रण और कड़ा करने के अपने प्रयास को वैधता भी दिलवाना चाहते हैं।

**वर्जित अन्य तथा वैकल्पिक अनुष्ठान**

चारु गुप्ता ने 'स्त्रियों की दैनिक ज़िंदगी पर चार आँखों'[106] का ज़िक्र किया है। बीसवीं सदी के आरम्भ में मुस्लिम समुदाय के साथ केवल घनिष्ठ संबंध ही नहीं बल्कि रोज़मर्रा का व्यवहार भी हिंदू पितृसत्तात्मक व्यवस्था के लिए गम्भीर ख़तरा माना जाने लगा था।[107] हिंदुत्ववादी प्रचारकों के लिए हिंदू महिलाओं को मुसलमानों से सम्बद्ध हर गतिविधि से दूर रहने का निर्देश देना एक उम्दा हथियार बनता गया। जैसे, कभी किसी क़ब्र को पूजने मत जाओ, गण्डे-ताबीज़, झाड़ा-फूँकी मुसलमानों से मत कराओ। वे लिखती हैं, ऐसे विस्तृत और सूक्ष्म निर्देश सम्प्रदाय विशेष के अलगाव के एजेंडे की पुष्टि करते हैं।[108] गीता प्रेस की किताबों के साथ हिंदी नवजागरण को जोड़ कर देखने से हिंदुत्व के साम्प्रदायिक ही नहीं बल्कि जातिवादी एजेंडे की भी पुष्टि होती है। यहाँ स्त्री की यौनिक शुद्धता के लिए ख़तरा केवल मुसलमान पुरुष ही नहीं है बल्कि निम्न जाति के पुरुष भी हैं जिन्हें जाति व्यवस्था के प्रारम्भ से ही ऊँची जाति की शुद्धता के लिए ख़तरा माना गया था। गीता प्रेस के सिद्धांतकार 'निम्न जाति' के पुरुषों तथा द्विज जाति की स्त्रियों के बीच सम्भव किसी भी तरह के सम्पर्क को ख़त्म कर देना चाहते हैं और इसके लिए वे बड़े तर्कवादी हो कर झाड़ा-फूँकी का विरोध भी करने लगते हैं, 'मूर्ख स्त्रियों के बहकाने से मूर्खता के वश हो भंगी से झाड़ा दिलाना तथा किसी नीच यवनादि विधर्मी पुरुष से थुथकारा डलवाना ... यह केवल स्त्रियों की मूर्खता है।'[109] 'बड़े शोक की बात है कि बहुत से शास्त्रोक्त कर्म भोली-भाली स्त्रियों ने नष्ट करके अनेक कुरीतियाँ चला दी हैं।'[110] 'किसी धार्मिक संस्था में कभी अकेली नहीं जाना चाहिए, क्योंकि ... इस समय तो शास्त्र विपरीत बहुत से वैश्य, शूद्र और चमार तक भी अपनी जीविका छोड़ कर साधू और भक्तों के वेश में तीर्थों आदि पर रहकर स्त्रियों से सेवा कराते हैं।'[111]

हिंदू स्त्रियों के ज़रिये मुस्लिम समुदाय से बने हुए रोज़मर्रा के संबंधों को ख़त्म करने के हिंदी लेखकों के प्रयास तथा साम्प्रदायिक अलगाव बढ़ाने के लिए मुसलमान पुरुषों को लम्पट, व्यभिचारी तथा कामुक के रूप में चित्रित करने की हिंदी लेखकों की तत्कालीन मुहिम पर ध्यान खींचते हुए उनका कहना है, 'भारतेंदु हरिश्चंद्र (1850-85), प्रताप नारायण मिश्र (1856-94), और राधाचरण गोस्वामी (1858-1923) जैसे कई प्रमुख हिंदी लेखक प्राय: मुसलमानों को हिंदू महिलाओं के बलात्कारी और अपहरणकर्ताओं के रूप में चित्रित करते थे।[112]

---

[105] हनुमान प्रसाद पोद्दार (2013) : 124.
[106] चारु गुप्ता (2005), वही : 200-212.
[107] हनुमान प्रसाद पोद्दार (2012) : 37.
[108] वही : 208.
[109] जयदयाल गोयंदका (2013) : 22.
[110] वही : 23.
[111] वही : 41.
[112] गरिमा श्रीवास्तव (2014) : 698.

हिंदी नवजागरण के लेखन में मुसलमानों को बलात्कारी के रूप में चित्रित किये जाते देखना निश्चित रूप से अतिशयोक्ति है जिसकी प्राथमिक स्रोतों से पुष्टि नहीं हो पाती, लेकिन गीता प्रेस के साहित्य में दलितों को उच्च जाति की स्त्रियों के लिए ख़तरे के रूप में निश्चित तौर पर देखा गया है। इनके साहित्य में दलितों को 'अपनी जीविका' छोड़कर साधू के भेस में महिलाओं से सेवा करवाने वाला कहा गया है। स्पष्ट है, जितना महत्त्वपूर्ण गीता प्रेस जैसे हिंदू संगठनों के लिए स्त्री की यौनिकता पर नियंत्रण है, उतना ही जुड़ा हुआ मसला 'शूद्र' और 'चमार' के लिए निर्धारित 'अपनी जीविका' में उन्हें क़ैद रखना भी है। यहाँ द्विज स्त्रियों के उन 'वैकल्पिक अनुष्ठानों' को नष्ट करने की भी कोशिश है, जहाँ अशुद्ध मानी गयी स्त्री अस्पृश्य माने गये दलितों या मुसलमान फ़क़ीरों के साथ मिलकर अपनी वैकल्पिक धार्मिक दुनिया बनाए हुए थी।

## 'स्त्री शिक्षा' का गीता प्रेस स्कूल : आदर्श नारी बनाम दूषित स्वभाव की नारी

> 'लड़कियों को भी पढ़ाइए मगर उस चाल से नहीं, जैसे आजकल पढ़ाई जाती हैं, जिस से उपकार के बदले बुराई होती है। ऐसी चाल से उनको शिक्षा दीजिए कि वह अपना देश और कुलधर्म्म सीखे, पति की भक्ति करैं और लड़कों को सहज में शिक्षा दें।'[113]
>
> 'युवक-शिक्षा द्वारा हिंदू दुर्ग पर आरम्भ में अंग्रेज़ों ने आक्रमण तो किया, किंतु वे दुर्ग की दीवालों को भग्न कर दुर्ग के अंदर न घुस सके। स्त्री-शिक्षा रूपी आक्रमण द्वारा वे दुर्ग की दीवालों को भग्न कर दुर्ग के अंत:पुर तक पहुँच गये ... यह लोग प्राचीन कालीन सुगृहिणी नारियाँ नहीं चाहते। यह लोग चाहते हैं अंग्रेज़ी मेम साहिबाएँ! अत: ये लोग स्त्री को पुरुष के समानाधिकार प्रदान करने के मिस हिंदू-समाज में और हिंदू घरों में अशांति और उच्छृंखलता का साम्राज्य स्थापन करने को तुले हुए हैं![114]

हिंदी नवजागरण और गीता प्रेस दोनों जगह हम स्त्रियों और पुरुषों की शिक्षा के प्रति दोहरा रवैया देखते हैं। बालमुकुंद गुप्त ने एक कविता लिखी थी जिसमें अंग्रेज़ों द्वारा स्त्रियों को पढ़ाने का मज़ाक़ उड़ाया गया था। गुप्तजी ने इसे 'हिंदू राष्ट्र' पर हमले के रूप में देखा था :

प्रभु वचनम
लियो हम शिक्षा हित अवतार।
जग उद्धार हेतु बपु धार्य्यो टेमस नीरथ पार।
या मुरली के द्वार करत नित शिक्षामंत्र प्रचार।
सरबस लैके देत सभ्यता यह उद्देश्य हमार।
सुबल हमारे सभ्य मास्टर ऐनक चपकनदार।
बने सुदामा लाट पादरी कर बिच डुग्गी धार।
सुनो हमारे सखा शिष्यगण ज़्वै कै सब हुशियार।
निज पलुअन को नाच दिखाओ खूब करौ त्योहार।।[115]

ठीक इसी तरह गीता प्रेस का साहित्य भी स्त्रियों की शिक्षा को 'पूर्व बनाम पश्चिम' की बहस में समेट देता है। यहाँ 'हिंदू दुर्ग' की रक्षा का समस्त भार क्योंकि स्त्रियों पर है अत: स्त्रियों को अशिक्षित ही रहना होगा। हिंदी नवजागरण के स्त्री उपयोगी साहित्य से लेकर गीता प्रेस द्वारा प्रकाशित की गयी स्त्री शिक्षा की किताबों तक 'स्त्री शिक्षा' का आशय एक तरह के 'गृहिणी ट्रेनिंग प्रोग्राम' से है जिसमें लड़कियों को बस इतनी शिक्षा देने की व्यवस्था की गयी हैं जिसे पाकर वे एक प्रशिक्षित घरेलू सेविका की भूमिका निभा सकें। *नारी धर्म* नामक पुस्तक में जयदयाल गोयंदका 'वर्तमानकाल

[113] *भारतेंदु हरिश्चंद्र ग्रंथावली,* भाग 6 : 70.
[114] पं. श्री द्वारिका प्रसाद जी चतुर्वेदी, 'आधुनिक नारी', *कल्याण,* नारी अंक : 155.
[115] *गुप्त निबंधावली,* खण्ड 1, : 677.

में स्त्री शिक्षा की कठिनाई' शीर्षक लेख में लिखते हैं, 'जहाँ कन्याओं और स्त्रियों को पुरुष शिक्षा देते हैं, वहाँ व्यभिचारादि दोष घट जाते हैं। ... कहीं-कहीं तो उनका भण्डाफोड़ हो जाता है और कहीं-कहीं नहीं भी होता है। स्कूल, कॉलेज, पाठशाला, अबलाश्रम, थिएटर, सिनेमा की तो बात ही क्या है। कथा, कीर्तन, देवालय और तीर्थस्थानादि का भी वातावरण स्त्री-पुरुषों के मर्यादाहीन संबंध से दूषित हो जाता है। इसलिए स्त्री-पुरुषों का संबंध जहाँ तक कम हो उतना ही हितकर है।' स्पष्ट है पुरुष अध्यापकों द्वारा युनिवर्सिटी तथा कॉलेजों में लड़कियों का पढ़ाना गीता प्रेस को स्वीकृत नहीं है और न ही उनकी जगह महिला अध्यापकों से पढ़वाने को वे राज़ी हैं क्योंकि, 'प्रथम तो विदुषी, सुशिक्षिता स्त्रियों का प्राय: अभाव-सा ही है। इस पर कोई मिल भी जाए तो सदाचारिणी होना तो अत्यंत ही कठिन है।'[116]

ऐसे में 'स्त्री शिक्षा' का वह पारम्परिक घरेलू मॉडल जिसकी पैरवी भारतेंदु हरिश्चंद्र ने हंटर कमीशन के सामने की थी और जिस पर उन्नीसवीं सदी के दौरान सैकड़ों पुस्तकें लिखी गयी थी, गीता प्रेस के स्त्री संबंधी साहित्य तक जारी रही। गीता प्रेस द्वारा प्रकाशित स्त्री-शिक्षा की किताबें इसी घरेलू मॉडल को नये ढंग से परिभाषित करती हैं। यह ज्ञान का 'गीता प्रेस स्कूल' है। इस तरह की स्त्री शिक्षा की व्यवस्था गीता प्रेस के उस 'आदर्श राष्ट्र' में की जाएगी जहाँ हिंदुत्व का साम्राज्य होगा। तो कैसी होगी 'स्त्री शिक्षा की यह गीता प्रेस पाठशाला'?

चूँकि 'स्त्री के लिए पति ही तीर्थ है, पति ही व्रत है, पति ही देवता एवं परम पूजनीय गुरु भी पति ही है। ऐसा होते हुए भी जो स्त्रियाँ दूसरे को गुरु बनाती हैं वे घोर नरक को प्राप्त होती हैं। जो लोग स्त्रियों को अपनी चेली बनाते हैं, वे ठग हैं।[117] सो 'स्त्री शिक्षा की गीता प्रेस पाठशाला' में दाख़िले के लिए लड़कियों का नौ वर्ष में विवाहित होना ज़रूरी होगा। क्योंकि लड़कियों का विवाह रजोदर्शन से पूर्व हो जाना चाहिए और 'रज निर्गत' होते ही उन्हें गर्भवती हो जाना चाहिए, ... लड़की के रजस्वला होते ही यह समझ लेना चाहिए कि वे माता बनने के योग्य हो गयी हैं ... अतएव प्रकृति का यही निर्देश है कि स्त्रियों को रजो दर्शन के समय से ही काम और मातृत्व के अंगों का व्यवहार करने देना चाहिए'।[118] हिंदी नवजागरण में बालविवाह का विरोध करने वाले लेखक भी लड़कियों की वैवाहिक उम्र अधिकतम दस या बारह वर्ष ही मानते थे। यह तर्क कि रजस्वला हो जाने पर बालिका पुरुष वर्ग के प्रति शुद्ध भाव नहीं रख पाती और चूँकि 'हिंदू राष्ट्र' की नींव हिंदू स्त्री की यौन-शुद्धता पर टिकी है, अत: बालवधू ही शुद्ध संतानों को जन्म दे सकेगी जिससे हिंदू धर्म की रक्षा हो सके। ऐसे में 'बहुओं की शिक्षा का भार स्वामी के वंश पर छोड़ा गया है'[119]और 'प्राचीन पद्धति' पर आधारित स्त्री शिक्षा के इस गीता प्रेस स्कूल में 'पति सासु आदि'[120] मास्टर होंगे और गीता प्रेस द्वारा संचालित यह स्कूल ससुरालों के प्रांगण में अवस्थित होगा क्योंकि 'कन्याओं के गुरुकुल, पाठशाला और विश्वविद्यालय का उल्लेख श्रुति-स्मृति, इतिहास-पुराणादि में कहीं नहीं पाया जाता।[121] जिसमें 'हर एक भाई को अपने-अपने घर में धार्मिक पुस्तकों के आधार पर' लड़कियों को पढ़ाना होगा ... प्रथम मनुष्य मात्र के सामान्य धर्म की एवं स्त्री मात्र के सामान्य धर्म की शिक्षा देकर, फिर कन्याओं के लिए, विवाहिता स्त्रियों के लिए एवं विधवा स्त्रियों के लिए अलग-अलग विशेष धर्म की शिक्षा'[122] दी जाएगी। निस्संदेह पाठ्यक्रम में लगाई गयी सभी पुस्तकें गीता प्रेस प्रकाशन से छपी होंगी।

---

[116] जयदयाल गोयंदका (2013) : 5.

[117] वही : 28.

[118] *कल्याण,* नारी अंक : 142.

[119] वही : 143.

[120] जयदयाल गोयंदका (2013) : 6.

[121] वही.

[122] वही.

इस स्कूल में 'हिंदुत्व' के आधार पर 'विज्ञान' के सिद्धांत लड़कियों को पढ़ाए जाएँगे। वही 'विज्ञान' स्त्रियों के लिए स्वीकृत होगा जिसमें नशे का इंजेक्शन देकर पति के साथ जला दी गयी स्त्री की 'वैज्ञानिक व्याख्या' थायरॉइड ग्लैंड के फटने या सत् चढ़ने के रूप में होगी और स्त्रियों की यौनेच्छा को 'कपाल में विद्यमान छह कीड़ों के काटने' से उत्पन्न समझाया जाएगा। जहाँ ये स्त्रियों को पढ़ा सकेंगे कि यह विज्ञान सम्मत है कि, 'घर में पापड़ बनते हों और रजस्वला स्त्री उनको देख ले तो पापड़ लाल हो जाते हैं। कुछ लोग इस बात को वहम् कहा करते हैं, परंतु यह एक वैज्ञानिक तथ्य है।'[123] और 'अमेरिकन जर्नल ऑफ़ क्लिनिकल मेडिसिन' के हवाले से बताएँगे कि, 'अमेरिका के प्रो. शीक ने अनुसंधान करके यह प्रमाणित किया है कि रजस्वला नारी के शरीर में ऐसा कोई प्रबल विष होता है कि वह जिस बग़ीचे में चली जाती है, उस बग़ीचे के फूल-पत्ते आदि सूख जाते हैं, फूलों के वृक्ष मर जाते हैं, फल सड़ जाते हैं। यहाँ तक कि वृक्षों में कीड़े आदि भी पड़ जाते हैं।'[124] जहाँ स्त्रियों को यह बताया जाएगा कि 'स्त्री में स्वतंत्रता की योग्यता ही नहीं है। स्त्री कितनी ही बलवती हो पर पुमान पर बलात्कार नहीं कर सकती। अत: उसके शील की रक्षा होनी चाहिए। उसे स्वतंत्र कदापि नहीं छोड़ना चाहिए।[125] मानो स्वतंत्र रहने के लिए बलात्कार की योग्यता हासिल करना कोई बुनियादी शर्त हो।

स्त्री शिक्षा के गीता प्रेस पाठशाला में 'स्वतंत्रता के लिए स्त्रियों की अयोग्यता' शीर्षक विषय के तहत स्त्रियों को बताया जाएगा कि 'स्त्रियों में काम, क्रोध, दुस्साहस, हठ, बुद्धि की कमी, झूठ, कपट, कठोरता, द्रोह, ओछापन, चपलता, अशौच, दयाहीनता आदि विशेष अवगुण होने के कारण वे स्वतंत्रता के योग्य नहीं हैं। ... उनके स्वतंत्र हो जाने से अत्याचार, अनाचार, व्यभिचार आदि दोषों की वृद्धि होकर देश, जाति, समाज को बहुत ही हानि पहुँच सकती है।'[126] हनुमान प्रसाद पोद्दार के इस लेख के ज़रिये लड़कियों को यह भी पढ़ाया जाएगा कि बुद्धि एवं शिक्षा के अभाव के कारण भी स्त्री स्वतंत्रता के योग्य नहीं है।[127]

'नारी निंदा की सार्थकता', 'सती माहात्म्य', 'सती चमत्कार', 'नारी और भोजन निर्माण कला', 'पत्नी का सुधार', 'नारी के दूषण', 'स्वतंत्रता के लिए स्त्रियों की अयोग्यता' तथा 'सुधार के नाम पर संहार' जैसे लेखों के ज़रिये स्त्रियों को अच्छी स्त्री बनाम बुरी स्त्री, प्राचीन नारी बनाम आधुनिक नारी, भारतीय नारी बनाम विदेशी नारी, सच्चरित्र स्त्री बनाम दूषित स्वभाव की स्त्री के प्रतीकों में स्त्रियों को बाँटा जाएगा। जिससे स्त्रियों में खुद को बेहतर दिखाने की प्रतिस्पर्धा पनपेगी। इसमें गीता प्रेस में कही हर एक बात को मानने वाली स्त्री अच्छी स्त्री होगी और शेष स्त्रियाँ, अपवित्र, व्यभिचारी तथा दूषित।

## निष्कर्ष

बालकृष्ण भट्ट ने जब एक ही 'वैदिक सम्प्रदाय' को हिंदू राष्ट्र' की पहचान के लिए अनिवार्य मानते हुए यह लिखा कि, 'जब समस्त हिंदू जाति की एक वैदिक सम्प्रदाय न रही तो वही मसल चरितार्थ हुई की 'एक नारि जब दो से फँसी जैसे सत्तर वैसे अस्सी।[128] तो यह स्त्री के प्रति हिंदी नवजागरण के दृष्टिकोण को ही दिखला रहा था। भट्ट जी उसी 'यौन शुद्धता' की बात कर रहे थे जिसका उल्लेख

[123] जयदयाल गोयंदका (2013) : 30.

[124] वही.

[125] पं. श्रीविजयानंदजी त्रिपाठी, नारी-धर्म, *कल्याण,* नारी अंक : 76.

[126] जयदयाल गोयंदका (2013) : 3-4.

[127] वही.

[128] बालकृष्ण भट्ट (2009) : 20.

हमने इस लेख में किया है। स्पष्ट है परिकल्पित हिंदू जाति के लिए न सिर्फ़ हिंदू स्त्रियों की एकनिष्ठता ज़रूरी थी, वरन भाषा और सम्प्रदाय की एकनिष्ठता भी। यहाँ संतति की 'शुद्धता' भी उतनी ही अनिवार्य है अन्यथा 'वर्णसंकर' संतानों के जन्म लेने से द्विज वर्णों की जातीय श्रेष्ठता का दावा निराधार रह जाएगा। ऐसे में हिंदू स्त्री की यौन आकांक्षाओं पर कठोर नियंत्रण 'समय की ज़रूरत' बन कर उभरा। हिंदू स्त्री की 'शुद्धता' पर मुसलमान तथा दलित पुरुष से ख़तरे का यह भय निर्मित करना तथा हिंदू स्त्री की विकृत और अनियंत्रित 'कामुकता' का शोर, दोनों ही 'हिंदुत्व' की राष्ट्रवादी विचारधारा के लिए आवश्यक हो गये थे। इसके सहारे ही 'कामुक' हिंदू स्त्री को घर के भीतर बनाए रखना सम्भव था। मध्यवर्गीय हिंदू स्त्रियाँ जो शिक्षित होकर सार्वजनिक क्षेत्र में 'समानता' और 'स्वतंत्रता' का दावा करने लगी थीं उनकी संख्या को और अधिक बढ़ने देना ब्राह्मणवादी पितृसत्ता के लिए कोई समझदारी का काम नहीं था। इन स्त्रियों को घर के भीतर रखकर 'गृहस्थी के जंजाल' से भी मुक्त हुआ जा सकता था और इन 'तुच्छताओं' से मुक्त होकर 'बाहर की दुनिया' में भरपूर दख़ल रखा जा सकता था। इसके लिए स्त्री शिक्षा की किताबों का लिखना और पत्रिकाओं का निकलना शुरू हुआ। इन पत्रिकाओं और पुस्तकों के ज़रिये स्त्रियों को 'गृहिणी धर्म' के नाम पर चौबीस घंटे के घरेलू कार्यों की सूची थमा दी गयी। साथ ही यह सुनिश्चित करने की भी कोशिश की गयी कि लड़कियाँ उस स्कूली शिक्षा से दूर रहें जो लड़कों के लिए निर्धारित है अन्यथा उनमें नौकरी की आकांक्षा और बाह्यजगत का आकर्षण जन्म ले सकता है। इसके लिए *बालाबोधिनी, आर्यमहिला* जैसी 'स्त्री शिक्षा' को समर्पित पत्रिकाओं में सीता, अरुंधती, अनसूया जैसी पतिव्रताओं के चरित्र, व्रतकथाएँ तथा 'शिशुपालन' या 'पतिसेवा' की विधियाँ बताते रहना ज़रूरी था और यह ध्यान रखना भी कि कहीं स्त्रियाँ *सरस्वती* या *माधुरी* जैसी साहित्यिक पत्रिकाएँ न पढ़ने लगें जिनमें प्राय: ही 'सुरुचिपूर्ण' तथा 'सहृदय' पाठकों के विनोदार्थ स्त्रियों के 'कलात्मक' अर्धनग्न चित्र छापे जाते थे। इस पर भी कहीं परिवार के पुरुष सदस्यों के पढ़ने हेतु मँगाई गयी ऐसी पत्रिकाएँ घर की स्त्रियों के हाथ लग ही जाएँ और उनकी पूर्व वर्णित नौ गुना कामुकता जागृत हो जाए तो उसके शमन के लिए 'गीता प्रेस' द्वारा उपलब्ध कराई गयी यौन संबंधों की जुगुप्साजनक व्याख्याएँ मौजूद ही हैं।

स्त्री का घर के भीतर रहना इसलिए भी अनिवार्य है क्योंकि घर से बाहर 'दैत्य गोभिल' जैसे पुरुष घुमा करते हैं जिनका काम ही है अकेले बाहर निकलने वाली स्त्रियों को उनके 'अपराध का दण्ड' देना। यह दण्ड बलात्कार है। अगर 'गृहिणी धर्म' की अनिवार्यता या पातिव्रत्य का उपदेश भी हिंदू स्त्रियों को घर तक सीमित रखने में कारगर न हुआ तो कम से कम बलात्कार का यह भय तो अवश्य होगा। इसके बाद भी अगर कोई स्त्री बाहर निकलती है तो निश्चित रूप से वह 'दूषित स्वभाव' की 'अशुद्ध' स्त्री है। जो 'पश्चिम की नक़ल' में 'आधुनिकता' के पीछे भाग रही है और अपनी 'शुद्धता' खो चुकी है। अपनी स्त्रियों की 'शुद्धता' खो देने के कारण ही आज 'हिंदू राष्ट्र', 'इतनी बुरी स्थिति में है। ऐसे में कथित हिंदू राष्ट्र' में व्याप्त बेरोज़गारी, भुखमरी, भ्रष्टाचार और दूसरी सभी समस्याओं की ज़िम्मेदार हिंदू स्त्रियाँ ही हैं, जो 'अपनी शुद्धता खोकर' और 'मिश्रित संतति' को जन्म देकर देश को पतन के गर्त में ले जा रही हैं। दूसरे विषयों में अपनी तमाम प्रगतिशीलता और 'आधुनिकता' के बावजूद उन्नीसवीं सदी का हिंदी संसार 'स्त्री' के साथ न्याय न कर सका। ऐसे में हिंदी नवजागरण के लेखन से आदर्श हिंदू स्त्री संबंधी जिस दर्शन को सूत्रबद्ध किया गया था, गीता प्रेस के हाथों उसकी यही परिणति सम्भव हुई।

## संदर्भ

अक्षय मुकुल (2015), *गीता प्रेस ऐंड द मेकिंग ऑफ़ हिंदू इंडिया,* हारपर कोलिंस पब्लिशर्स, नयी दिल्ली.

अभय कुमार दुबे ( 2019), *हिंदू-एकता बनाम ज्ञान की राजनीति,* वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली.

ओमप्रकाश सिंह (सं.) (2008), *भारतेंदु हरिश्चंद्र ग्रंथावली,* भाग 6, प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली.

उमा चक्रवर्ती (1989), 'द वर्ल्ड ऑफ़ द भक्तिन इन साउथ इंडियन ट्रेडिशंस : द बॉडी ऐंड बियॉन्ड', *मानुषी,* जनवरी-जून.

उमा चक्रवर्ती (2011), *जातिसमाज में पितृसत्ता : नारीवादी नज़रिये से,* अनु. विजय कुमार झा, ग्रंथ शिल्पी, नयी दिल्ली.

*कल्याण,* नारी अंक.

क्रिस्टोफ़र आर किंग (1944), *वन लैंग्वेज टू स्क्रिप्ट्स : द हिंदी मूवमेंट इन नाइंटींथ सेंचुरी नॉर्थ इंडिया,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली.

कैरोलिन हीले डाली (1988), *द लाइफ़ ऑफ़ डॉ. आनंदीबाई जोशी, अ किंस वुमन ऑफ़ पण्डिता रमाबाई,* रॉबर्ट ब्रदर्स, बोस्टन.

गरिमा श्रीवास्तव (2009), मुंशी इश्वरीप्रसाद तथा मुंशी कल्याणराय, *वामा शिक्षक,* नेशनल बुक ट्रस्ट, नयी दिल्ली.

-----------(2014), 'नवजागरण, स्त्री प्रश्न और आचरण पुस्तकें', *प्रतिमान समय समाज संस्कृति,* सीएसडीएस, जुलाई-दिसम्बर, वर्ष 2, खण्ड 2, अंक 2.

ग्लोरिया स्टीनम (1978), 'इफ़ मेन कुड मेन्स्ट्रूएट', *मिस मैगजीन,* अक्टूबर.

*गुप्त निबंधावली,* खण्ड 1.

चारु गुप्ता (2005), *सेक्शुअल, ऑब्सिनिटि, कम्युनिटी : वीमेन, मुस्लिम्स, ऐंड द हिंदू पब्लिक इन कोलोनियल इंडिया,* परमानेंट ब्लैक, नयी दिल्ली.

जयदयाल गोयंदका (2013), *नारी धर्म,* गीता प्रेस, गोरखपुर.

जॉन ज़ावोस, प्रलय कानूनगो, दीपा एस रेड्डी, माया वारियर तथा रेमंड विलियम्स (2012), पब्लिक हिंदुइज़म, सेज, नयी दिल्ली.

ठाकुर श्रीरामप्रकाशजी रईस, 'सती रामदेवी के सतीत्व का प्रभाव', *कल्याण,* नारी अंक.

तनिका सरकार (1995), 'हिंदू कंजुगैलिटी ऐंड नेशनलिज़म इन लेट नाइंटीथ सेंचुरी बेंगाल', जसोधरा बागची (सं.), *इंडियन वीमेन : मिथ ऐंड रियलिटी,* साउथ एशिया बुक्स, नयी दिल्ली.

तनिका सरकार और सुमित सरकार (सं.) (2011), 'कंजुगैलिटी ऐंड हिंदू नैशनलिज़म : रेज़िस्टिंग कलोनियल रीज़न ऐंड द डेथ ऑफ़ अ चाइल्ड वाइफ़', *विमेन ऐंड सोशल रेफ़ॉर्म इन मॉडर्न इंडिया,* परमानेंट ब्लैक, नयी दिल्ली.

नारी शिक्षा

निवेदिता मेनन (2012), *सीइंग लाइक अ फ़ेमिनिस्ट,* जुबान.

पं. श्री हनुमानजी शर्मा, 'नारी-तत्त्व', *कल्याण,* नारी अंक .

पं. श्री मुरारीलालजी शर्मा, 'श्रीबादामी देवी', *कल्याण,* नारी अंक.

पं. श्रीमथुरानाथजी शर्मा, साहित्यरत्न, 'सती सम्पति', *कल्याण,* नारी अंक.

पं. श्री द्वारिका प्रसाद जी चतुर्वेदी, 'आधुनिक नारी', *कल्याण,* नारी अंक.

पं. श्रीविजयानंदजी त्रिपाठी, 'नारी-धर्म', *कल्याण,* नारी अंक.

पण्डित गौरीदत्त (1872/2006), *देवरानी जेठानी की कहानी,* पुष्पलाल सिंह (सं.), रे माधव पब्लिकेशन, नयी दिल्ली.

पार्थ चटर्जी (1993), *द नेशन ऐंड इट्स फ्रेगमेंट्स,* प्रिंसटन युनिवर्सिटी प्रेस, प्रिंसटन.

'पातिव्रत्य के त्याग का कुपरिणाम', *सती सुकला,* गीता प्रेस गोरखपुर.

बाबू सम्पूर्णानंदजी, शिक्षासचिव, संयुक्तप्रांत, 'नारी में परा शक्ति', *कल्याण,* नारी अंक.

*बालाबोधिनी.*

बालकृष्ण भट्ट (2009), *निबंधों की दुनिया,* निर्मला जैन (सं.), वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली.

बालकृष्ण भट्ट, *प्रतिनिधि संकलन,* नेशनल बुक ट्रस्ट, नयी दिल्ली.

भारत भगिनी, जनवरी, 1902.

मधु किश्वर (2000), 'यस टू सीता, नो टू राम : द कंटीन्यूइंग होल्ड ऑफ़ सीता ऑन पॉप्युलर इमैजिनेशन इन इंडिया', पौला रिचमैन (सं) *क्वेश्चनिंग रामायनाज़,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली.

राजेंद्र टोकी (2013), प्रेमघन रचनावली, भाग 2, आशा बुक्स, नयी दिल्ली.

राधा कुमार (2002), *स्त्री संघर्ष का इतिहास,* वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली.

रामनाथ सुमन (2010), *सती सुकला,* गीता प्रेस, गोरखपुर.

वसुधा डालमिया तथा संजीव कुमार (सं.)(2014), भारतेंदु हरिश्चंद्र, पतिव्रत, *बालाबोधिनी,* फ़रवरी और मार्च, सन् 1874, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली.

विजयशंकर मल्ल (सं.)(संवत् 2049), *प्रताप नारायण ग्रंथावली,* नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी.

शाकम्बरी जुयाल (2017), *द स्टेटस ऑफ वीमेन इन एपिक्स,* मोतीलाल बनारसीदास, नयी दिल्ली.

शालिनी शाह (2012) 'ऑन जेंडर, वाइव्ज़ ऐंड पतिव्रताज़', *सोशल साइंटिस्ट,* खण्ड 40, अंक 5/6, मई–जून.

श्री चारुचंद्रजी मित्र, एटर्नी-एट-ला, 'नारी पाश्चात्य समाज में और हिंदू समाज में', *कल्याण,* नारी अंक.

श्री पद्मा देवी जी मिश्रा, 'सती शिवराज बाई', *कल्याण,* नारी अंक.

सत्यप्रकाश मिश्र (सं.)(2011), *बालकृष्ण भट्ट : प्रतिनिधि संकलन,* नेशनल बुक ट्रस्ट, नयी दिल्ली.

'सती जरत्कारु', *कल्याण* नारी अंक.

'सती कमला', *कल्याण,* नारी अंक (2013), गीता प्रेस, गोरखपुर.

सैली सदरलैंड (1989), 'सीता ऐंड द्रौपदी : अग्रेसिव बिहेवियर ऐंड फ़ीमेल रोल मॉडल्ज़ इन संस्कृत एपिक्स', *जर्नल ऑफ द अमेरिकन ऑरिएंटल सोसायटी,* खण्ड 109 अंक 1.

सुदेश वैद और कुमकुम संगारी (1997), 'इंस्टीट्यूशन, बिलीव्ज़, आयडियोलॅजीज़ : विडो इमोलेशंस इन कंटेम्परेरी राजस्थान', *इकॉनॉमिक ऐंड पॉलिटिकल वीकली,* 27 अप्रैल.

हनुमान प्रसाद पोद्दार (2012), *नारी-शिक्षा,* गीता प्रेस, गोरखपुर.

-------------(2013), *दाम्पत्य-जीवन का आदर्श,* गीता प्रेस, गोरखपुर.

-------------(2013), *स्त्री-धर्मप्रश्नोत्तरी,* गीता प्रेस, गोरखपुर.

'हरिजन-सती', *कल्याण,* नारी अंक, गीता प्रेस, गोरखपुर.

हेमंत शर्मा (सं.)(1989), *भारतेंदु समग्र,* हिंदी प्रचारक संस्थान, वाराणसी.